२५८

ज्योति शिखा

मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥

Summit

सत्य है सदा सुलीं पर !

आचार्य श्री रजनीश के जन्म दिवस पर।

कलाकार : कमलेश, रायपुर

In this PDF, pages 1-2 are missing.

ज्योति पुरुष आचार्य श्री. रजनीश

: एक जीवन परिचय

(११ दिसम्बर, जन्म दिवस, के अवसर पर विशेष)

लेखक : श्याम सोनी, एम्. ए.

मनुष्य एक यात्रा है— अनन्त के लिए यात्रा है । नीत्से ने कहा है "मनुष्य की महत्ता यही है कि वह सेतु है, अंत नहीं ।" मनुष्य की यात्रा परमात्मा तक है । मनुष्य प्रारम्भ नहीं है । मनुष्य अंत भी नहीं है । पशु प्रारम्भ है, परमात्मा अंत है । नदी की सागर से मिलने की व्यग्रता के समान ही मनुष्य की स्थिति है । नदी का सागर में विलय नदी को संकीर्णता के दायरे से निकालकर महान बना देता है । नदी का विलय उसका सौभाग्य, सफलता एवं सार्थकता है । इसी तरह मनुष्य का परमात्मा से मिलन उसको दिव्य बना देता है ।

आचार्य श्री रजनीश का जीवन स्वाभाविक रूप से सरिता के समान प्रवाहित तथा विकसित हुआ है । परमात्मा से मिलन हेतु प्राणों की आकुलता ने जीवन धारा को गति और वेग प्रदान किया, पर्वतों से सागर की ओर दौड़ती हुई गंगा सम्यक जीवन का प्रतीक है । उसकी यात्रा में एक ही लक्ष्य है— सागर से मिलन । वह स्वयं को खोना चाहती है— विराट में खोना चाहती है । व्यति से विराट होना चाहती है । सागर में विलय ही उसका आनन्द है । वहां भेद नहीं है, अकेलापन नहीं है, सीमाओं की क्षुद्रता नहीं है, वहां वह अपनी पूर्णता में है । सागर की खोज में सरिता होना है— इसी आकुलता ने आचार्य श्री रजनीश की जीवन सरिता को अदम्य वेग से गतिशील रखा । तन और मन दोनों तटों के बीच

चेतना रूपी जल का उद्भव तथा विकास लक्षित हुआ। जीवन धारा के उद्गम से ही आनन्ददायी शीतल शुद्ध जल का अविर्भाव हुआ। सरिता की यात्रा के साथ तटों में परिवर्तन तथा सीमा में विस्तार होता गया। जल ने तटों को नेतृत्व प्रदान किया। पथ के पत्थरों ने मार्ग में अवरोध उपस्थित करना चाहा। किन्तु जल के शक्तिशाली वेग के कारण पत्थरों, चट्टानों के प्रयास असफल सिद्ध हुए। प्रबल अभीप्सा श्रम साहस और संकल्प के आगे कोई भी अवरोध टिक न सका। श्रम साहस और संकल्प के अभाव में इन्ही चट्टानों पत्थरों से छिड़ कर सामान्यतः जीवन एक डबरा बन जाता है। सच ही हमारा जीवन एक डबरे से भिन्न कहां है ? पर आचार्य श्री की जीवन गंगा तो परमात्मा के सागर से मिलने को व्याकुल थी। चेतना की प्रखरता तथा पवित्रता को कुछ भी प्रभावित न कर सका। तन मन के सम्यक सहयोग और चेतना के नेतृत्व में उनका जीवन विकसित हुआ। परिणाम सामने है। सागर की खोज वस्तुतः स्वयं को खोने की ही खोज थी। इसके अतिरिक्त स्वयं को पाने का, स्वयं हो जाने का, और कोई मार्ग भी तो नहीं है। वही सरिता स्वयं को सागर में खोकर– सागर होकर जगत को प्रेम और आनंद से भरने के लिए उपस्थित है।

आचार्य श्री का जन्म ११ दिसम्बर १९३१ को ननिहाल में, शहरी कोलाहल से दूर— विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में बसे ग्राम कुचवाड़ा के शांत वातावरण में हुआ। कुचवाड़ा वर्तमान मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में है। नाना ने राजा नाम रखा। छह (६) माह की अवस्था में पिताजी के घर टिमरनी आये। टिमरनी होशंगाबाद जिले में एक छोटा सा कस्बा है।

पिताजी का नाम श्री बाबूलाल जी तथा मां का नाम श्रीमती सरस्वती बाई है। उस समय परिवार में माता पिता के अतिरिक्त दादा, दो काका, तथा दो बुआ थीं। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, व्यापार चिन्तनीय था। इस कारण से पूरा परिवार सन् १९३४ में टिमरनी छोड़कर गाड़रवारा आ गया। गाड़रवारा मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले में जबलपुर इटारसी के बीच मध्यरेलवे मार्ग पर स्थित एक कस्बा है। गाड़रवारा में दादाजी तथा पिताजी ने कपड़े का व्यापार प्रारम्भ किया। उनकी व्यापार कुशलता तथा परिश्रम और लगन से परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

नाना का प्रेम राजा पर अत्याधिक था। राजा का अधिकांश शिशु जीवन ननिहाल में ही व्यतीत हुआ। परिवार में राजा को छोड़ दो बहिने – रसा और कुसुम तथा एक भाई विजय जन्म ले चुके थे। दोनों काका शाला में पढ़ते थे तथा बुआएं ससुराल चली गईं थीं। परिवार में ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण पूरे परिवार का लाड़

प्रेम उन पर था। वे स्वयं भी भाई बहिनों के प्रति बचपन से ही प्रेम से भरे थे। व्यवहार में क्रोध, आंतक तथा भय का नाम तक न था। वे प्रेम से परिपूर्ण थे। एक घटना का स्मरण मां ने दिलाया। तब राजा की आयु लगभग पांच वर्ष रही होगी सबसे छोटी बहिन कुसुम का देहान्त अल्प आयु में ही हो गया। परिवार में शोक छा गया। सबसे अधिक दुख राजा को था। उसका भोजन छूट गया और वो बीमार पड़ गया। नीरोग होने पर भी भोजन ग्रहण करना प्रारम्भ नहीं हो सका। मां ने राजा के मानसिक क्लेश का अनुभव कर कई तरह से खेल में बहला कर भोजन देने का प्रयास किया, किन्तु सब असफल रहा। उसी समय वहां कोई मुनि आये हुये थे। उनके भोजन करने की विधि राजा के मन को भा गई। तब वैसा ही खेल रच कर उसे भोजन देना शुरू किया गया। एक लंगोटी बांध दी जाती और एक छोटी सी कमण्डलनुमा लुटिया उसके हाथ में दे दी जाती। सम्बोधन करने पर राजा पास में आता और एक एक कौर भोजन ग्रहण करता। वह लंगोटी पर प्रसन्न था। इस घटना से लगता है मानो साधु की चित्त दशा के बीज बहुत बचपन से ही उनके मन में थे।

राजा को सात वर्ष की आयु पूरी होने पर स्थानीय गंज प्राथमिक शाला में भरती किया गया। लेकिन, दो वर्षों तक उसें शाला की बंद दीवारों में बैठने के लिए राजी ही न किया जासका। उसका विद्रोही तभी से दीवारों में बंद होने को कभी भी राजी नहीं रहा है। बहुत कठिनाई से ही नौ वर्ष की उम्र में वह पढ़ने में उत्सुक हुआ। और जब उत्सुक हुआ तो निश्चय ही उस जैसा विद्यार्थी नहीं था। राजा अब शाला में रजनीश चन्द्र मोहन हो गया। नवीन नामकरण छोटे काकाजी द्वारा किया गया। पहिली कक्षा से ही होनहार होने की बात स्पष्ट दिखने लगी थी। बुद्धि प्रखरता तथा चित्रकला में प्रवीणता ने कक्षा में प्रथम स्थान दिया। अक्षरों की बनावट, लिपि की स्वच्छता एवं सुन्दरता पर गुरुजन प्रसन्न थे। शिक्षकों द्वारा रजनीश का सुन्दर लेखन कार्य अन्य विद्यार्थियों के समक्ष एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। चित्रकला के क्षेत्र में कठिन से कठिन चित्र बनाना उनके लिये एक सहज कार्य था। दूसरी कक्षा से ही समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं का अध्ययन प्रारम्भ हो गया। मां तथा काकाजी द्वारा सुनाई हुई कहानियों के आकर्षण के कारण पत्रिकाएं पढ़ने में विशेष चाव था। इसी बीच स्थानीय सार्वजनिक पुस्तकालय का सदस्य बनकर पुस्तकों का अध्ययन प्रारम्भ किया। पुस्तकालय का सबसे कम आयु का यह सदस्य सबके आश्चर्य का पात्र था। अद्भुत स्मरण शक्ति और विलक्षण प्रतिभा के समन्वय ने सबको प्रभावित किया। तार्किकता अधिक थी। उनकी बुद्धि प्रखरता और प्रतिभा के विकास में परिवार का भी पूर्ण योगदान रहा।

पिताजी एक अद्‌भुत व्यक्ति हैं – मानवीय गुणों से सम्पन्न, त्याग, सेवा, और प्रेम में आनन्द का अनुभव करने वाले– एक सहृदय व्यक्ति । व्यापारी हैं पर व्यापार उनके हृदय को कहीं छू तक नहीं गया है । उनका व्यपार भी मानो उनकी प्रेम और सेवा की आंतरिक प्रवृत्ति की ही बाह्य अभिव्यक्ति है । बड़े काका श्री अमृत-लाल जी "चंचल" की अभिरुचि साहित्य की ओर है । श्री चंचल जी ने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की है । कवि हृदय हैं । नगर के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक आयोजनों में उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी । सन् १९३१ में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल गये थे । छोटे काका श्री शिखरचन्द का झुकाव राजनीति की ओर था । वे कांग्रेस के सक्रिय सदस्य तथा उग्र और प्रगतिशील विचारों से प्रभावित एक सक्षम समाजवादी थे । नगर में समाजवादी विचारधारा का श्रीगणेश तथा प्रसार का श्रेय आपको ही है । उनकी मैट्रिक से आगे की शिक्षा राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण सम्भव नहीं हुई । इस तरह से पूरा परिवार व्यापार, राजनीति और साहित्य के वातावरण से ओतप्रोत था । इसी त्रिधारा के बीच रजनीश का विकास आरम्भ हुआ ।

प्राथमिक स्कूल में ही उन्होंने कविता कहानी का लिखना शुरू किया । पुस्तकों से पढ़ी हुई एवं स्वयं बनाई हुई कविताएं हम मित्रों को सुनाते थे । उनका अर्थ और व्याख्या भी बतलाते थे । यह एक नियमित कार्यक्रम था । राजनीतिक साहित्य सुगमता से उपलब्ध होने तथा राजनीतिक व्यक्तियों की चर्चाओं से देश की राजनीतिक उथल-पुथल से परिचित हुए । तीनों धाराओं का आकर्षण प्रभावित करने में विफल रहा साधन के रूप में सहायक अवश्य रहा पर साध्य उनमें से कोई भी न बन सका ।

मानसिक विकास के साथ शारीरिक विकास में भी संलग्नता थी । व्यायाम में रुचि थी । नदी में तैरना एक आनंद था । सुबह शाम घूमना नित्य का क्रम था । निर्भयता प्रशंसनीय विशेषता थी । मित्रों से, भय न खाने का आग्रह करते । वे कहते– "जिससे भयभीत होते हैं उससे ही हमारा साथ हो जाता है । जिससे भय खाओगे वही पीछा करेगा । और जिससे जिस मात्रा में भय है उससे उसी मात्रा में पराजय भी है ।" मैंने एक बार पूछा था कि जीवन में सबसे बड़ा गुण क्या है ? तब रजनीश का उत्तर था–! साहस जीवन का सबसे बड़ा गुण साहस है, क्योंकि साहस के बिना स्वतंत्रता नहीं, स्वतंत्रता के बिना सत्य नहीं और सत्य के बिना सदाचार नहीं । वस्तुतः साहस जीवन के लिए वही करता है जो कि किसी भी भवन के लिए नींव के पत्थर करते हैं ।" बचपन के इस विचार की अभिव्यक्ति आज के इस कथन से कितना सामंजस्य रखती है – कि "धर्मों की भित्ति भय पर है जबकि धर्म की

आत्मा है अभय। वह बन में जाने का साहस नहीं वरन् स्वयं के भीतर भय के कारण स्वीकृत समस्त धारणाओं को छोड़ देने का साहस है। अपने भय के कारण हम स्वयं ही उन्हे पकड़े हुए हैं। कोई और मूलतः जिम्मेदार नहीं है। भय है और उसे सुरक्षा पानी है, तो किसी न किसी की शरण जाना ही होगा। शरणागत होने की वृत्ति भय से पलायन ही है। उससे भय तो नष्ट नहीं होता। उल्टे व्यक्ति पर निर्भर हो जाता है। भय से परनिर्भरता आती है, परनिर्भरता और भय ले आती है। इस भांति हमारा चित्त एक ऐसे अंतहीन वृत्त में पड़ जाता है जिससे बाहर निकलने का फिर कोई मार्ग ही नहीं दिखाई देता।" बचपन के इस निर्भयता बोध की सार्थकता आज कितनी स्पष्ट दिखाई देती है।

फोटोग्राफी भी इसी समय सीखना प्रारम्भ किया। स्वभाव विनोदी था। केश सज्जा प्रिय थी। बाल सुन्दर, लम्बे और घुंघराले थे। समस्त छात्रों में वे अग्रगण्य थे। सबका नेतृत्व करते थे। इसी समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में भी भाग लेना शुरू किया। पर विचरधारा की असंगति के कारण शीघ्र ही अलग हो गये।

प्राथमिक शाला की चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद स्थानीय नगरपालिका हाईस्कूल में अपना नाम १९४४ में दर्ज कराया। इसी समय संयुक्त परिवार का विघटन हुआ। रजनीश का परिवार एक अन्य मकान में रहने को चला आया। बड़े भाई ने छोटे भाईयों को घर से नहीं निकाला वरन् बड़े भाई छोटे भाइयों की सुख सुविधा हेतु स्वयं मकान छोड़ कर अलग रहने लगे. प्रेम, उदारता और सहनशीलता की इस घटना ने रजनीश को प्रभावित किया। प्रेम के स्फुरण को बल मिला। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ छोड़ने के बाद आज़ाद हिन्द दल (I. N. A.) का गठन किया पर संगठन अल्पजीवी रहा। अध्ययन की गति काफी तीव्र हो चुकी थी। घर में एक पुस्तकालय अपनी निजी पुस्तकों का बन चुका था। लेखन कला में प्रगति थी। छठवीं कक्षा में एक हस्तलिखित पत्रिका 'प्रयास' का सम्पादन किया। इस पत्रिका की अनेक रचनायें रजनीश लिखित थीं और सुन्दर चित्रों से सुसज्जित थीं। भाषण देना भी प्रारंभ हो चुका था। शाला में आयोजित कार्यक्रमों में उनका भाषण सर्वश्रेष्ठ रहता था। साहित्य और राजनीति दोनों विषयों पर भाषण देते थे। साहित्य के अध्ययन में जासूसी साहित्य, रवीन्द्र साहित्य, शरत् साहित्य एवं प्रेमचंद साहित्य आदि मिड़िल स्कूल में ही पढ़ चुके थे। समाजवादी साहित्य भी अछूता नहीं था। रवीन्द्र साहित्य सबसे अधिक प्रिय था। अध्ययन विधि आकर्षक थी। पुस्तक के पठन के बाद उसका सार अच्छाइयों एवं बुराइयों सहित साथी मित्रों के बीच प्रस्तुत करते थे।

साथियों का मत भी आमंत्रित करते थे। अपनी तर्क शक्ति से साथियों के मत का खंडन और मंडन करते एवं उनकी सार्थकता एवं निरर्थकता की ओर इंगित करते। उनके विचार सरल, स्पष्ट, सुलझे हुए और हृदय-ग्राही होते थे। विचार के बिना सोचे विचारे ग्रहण करने का आग्रह नहीं रहता था। अंधविश्वास के विरोधी थे। विश्वास मात्र को अंधा मानते थे। वे कहते-"विश्वास के कारण विवेक सतेज नहीं हो पाता। विश्वास के कारण उसके जागरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे किसी व्यक्ति को बचपन से पैरों की जगह बैसाखियों के सहारे चलाया जाये तो उसके पैर पंगु हो जाएंगे। ऐसे ही जो विश्वास के सहारे चलते हैं उनकी स्वयं की बुद्धि और विवेक भी जड़ और पंगु हो जाते है। वे सन्देह करने को कहते थे। श्रद्धा और विश्वास से विरोध तथा संदेह और विद्रोह से मित्रता थी। वह उस श्रद्धा और विश्वास को त्याज्य मानते थे। जो स्वयं पर नहीं है। दूसरों पर श्रद्धा से शक्ति नहीं अशक्ति आती है। आत्म श्रद्धा शक्ति है। स्वयं पर विश्वास से ही शक्ति के सोये स्त्रोत जागते हैं। सत्य की खोज विश्वास से नहीं संदेह से होती है। सत्य की खोज में संदेह से बड़ी और कोई शक्ति नहीं है। श्रद्धा खोज का प्रारंभ नहीं अंत है। आरम्भ तो संदेह है। सम्यक अनुसंधान संदेह से प्रारम्भ और श्रद्धा पर समाप्त होता है। ज्ञान ही श्रद्धा है। सत्य श्रद्धा का जन्म तो ज्ञान से ही होता है। अज्ञान में जो साधा जाता है वह विश्वास है श्रद्धा नहीं। श्रद्धा को लाने को सीखना पड़ता है- संदेह - सम्यक संदेह। संदेह अविश्वास नहीं है। क्योंकि अविश्वास तो विश्वास का ही नकारात्मक पहलू है। संदेह अविश्वास हो तो वह असम्यक और अस्वस्थ्य हो जाता है। वह तो जिज्ञासा है। वह तो है खोज की अदम्य वृत्ति। वह तो है ज्ञान की अभीप्सा।

साथियों की शिथिलतापर अक्सर आगे बढ़ने का एक सूत्र समझाते। उनका आग्रह था कि प्रति दिन सूर्य निकले तो तुममें कुछ नवीनता अवश्य पावे। इसी विधि से अध्ययन और कार्य करने पर अधिक बल रहता था। इस समय दिनचर्या नियमित थी। सूर्योदय से पहिले ही नदी तट पर व्यायाम स्नान आदि से निवृत्त हो जाते थे। नदी से लौटकर अध्ययन, फिर ११ बजे से पांच बजे तक शाला में पढ़ना, ६ बजे शाम से ७ बजे तक पुस्तकालय में अध्ययन तथा ७ बजे से रात्रि ९ बजे तक खुले मैदान में साथियों के साथ चर्चा फिर रात्रि ९ बजे से ११ बजे तक स्वाध्याय।

छोटे काका द्वारा स्थापित "जन अध्ययन कक्ष" में समाजवादी साहित्य का अध्ययन विशेष रूप से हुआ। साथ ही साम्यवादी साहित्य का पठन किया। साम्य-

वादी साहित्य ने आकर्षित किया। प्रारम्भ से ही असहाय, दुखी और पराजित व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति थी। साम्यवादी साहित्य के अध्ययन से उनके मन में समाज की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना पैदा हुई। गांधी के अध्ययन का स्थान कार्ल मार्क्स ने ले लिया। जीवन से अशांति तथा दुख के निराकरण का उपाय पहले उन्हे इस साम्यवादी दर्शन में दिखाई दिया। किन्तु शीघ्र ही उन्हें लगा कि मनुष्य के दुख की जड़ें आर्थिक और राजनीतिक भूमि में नहीं छिपी हैं। उसका मूल उत्स कहीं और ही है। इस निष्कर्ष ने उनके चिन्तन को नया मोड़ दिया। राहुल जी का साहित्य तो पढ़ ही रहे थे, अब साथ ही बौद्ध साहित्य भी पढ़ना शुरू किया।

इस समय रजनीश हाईस्कूल के छात्र बन चुके थे। शाला के प्रति दिन के जीवन में उनका विद्रोह झलकने लगा था। शाला में प्रचलित अनुशासन से उनका असहमत होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि अनुशासन को वे चित्त के विकास और विचार के जन्म में बाधा समझते थे। स्वतंत्र और स्वयं के विवेक को उपलब्ध व्यक्ति होने पर बल था। वे कहते "मनुष्य में जड़ता और बुद्धिहीनता लाने का श्रेय इसी तथाकथित अनुशासन को है। स्वतंत्र चिन्तन के बीज को इस अनुशासन की आबहवा में वृक्ष बनना समभ्व हीं नहीं रह जाता। मनुष्य की परतंत्रता के लिये अनुशासन को साधन के रूप में उपयोग में लाया गया है। हां, विवेक हो तो व्यक्ति के जीवन में एक स्वतःस्फूर्त अनुशासन अपने आप पैदा होने लगता है। उसे लाना नहीं पड़ता वह तो अपने आप आ जाता है। लेकिन जहां विवेक सिखाया ही नहीं जाता वहां अनुशासन का भी जन्म नहीं हो सकता। जो ऊपर से थोपा जाता है वह अनुशासन मिथ्या तो होता ही है। क्योंकि उसकी जड़ें स्वयं के विवेक में नहीं होतीं और व्यक्ति का अन्तःकरण भीतर की भीतर उस थोपे हुए अनुशासन के विरोध में सुलगता रहता है।" ऐसे अनुशासन के द्वारा व्यक्ति को चेतना का सारा आनन्द और सारी सहजता छीन लेने पर और व्यक्ति को एक खंडहर बनाने पर उनका मन एक विद्रोह से भर जाता था। उनका विद्रोह, विरोध न था। विरोध तो प्रतिक्रिया जन्य होता है। जबकि विद्रोह तो एक प्रकार का जागरण है। विद्रोह तो एक ऐसे सजीव बोध में निहित है जहां चित्त स्वयं को जानने को जागरुक है और किसी भी भांति की मान्यता को या मान्यता के विरोध को अपने भीतर इकठ्ठा नहीं होने देता। विद्रोह अंधविश्वास से भिन्न विवेक की दृष्टि है। विद्रोह विवेक ही है।

शाला में दमन एवं आतंकवादी नीति के कारण छात्रों में असंतोष था।

पर आगे कौन आये ? रजनीश के हृदय में असह्य वेदना थी। परिणाम स्वरूप उन्होंने छात्रों का नेतृत्व किया और समस्त छात्रों की वाणी उनके द्वारा प्रगट हुई। अंत में सफलता पाई। उचित कहने में उनकी स्पष्टवादिता ने उनको अप्रिय भी बनाया। उनको शाला से निकालने की चेष्टा की गई। पर सत्य की अभिव्यक्ति में परिणामों की चिन्ता बाधा न बन सकी। प्रिय अप्रिय का विचार प्रधान न था– प्रधानता थी सत्य और उचित के प्रकटीकरण की। हाई स्कूल में सभी विषयों का अध्ययन जारी था। घरेलू पुस्तकालय में क्रमशः संग्रह बढ़ता जाता था। पुस्तकें खरीदने के लिये परिवार से मनचाही निधि मिल जाती थी। सभी विषय की पुस्तकें पढ़ने और खरीदने का चाव था।

इसी वर्ष की एक घटना का स्मरण आता है। कार्तिकी पूर्णमा की रात्रि थी। लगभग ११ बजे होंगें। हम लोग नदी तट पर बैठे थे। चारो ओर शांत और निस्तब्ध वातावरण था। एकाएक रजनीश ने मौन भंग किया। उन्होंने प्रगट किया कि उनकी आश्यकता धर्म के क्षेत्र में है। अन्य क्षेत्रों में नहीं है। धर्म ही उनका यथार्थ कर्मक्षेत्र है। उनकी यह अनुभूति उस समय मुझे प्रीतिकर एवं संगतिपूर्ण न दिखी क्योंकि उस समय झुकाव साम्यवाद की ओर अधिक था। किन्तु दूसरे ही दिन उनकी यह प्रतीति कियात्मक रूप में प्रकट होने लगी। राजनीति और साहित्य सब धर्म की तुलना में महत्वहीन हो गया। एकमात्र क्षेत्र दर्शन और धर्म रह गया।

निर्भयता, प्रकृति प्रेम और खोज की प्रवृत्ति के कारण रात्रि को एकान्त स्थानों में और सुनसान जगहों में घूमना फिरना और खेलना जारी था। नदी तट के निर्जन स्थानों में भ्रमण, चांदनी रात में नौका विहार आदि दैनिक गतिविधियां थीं। साथियों के भयभीत होने पर साहस दिलाते। उनका प्रकृति–प्रेम उस समय उतना समझ में नहीं आता था। जितना स्पष्ट आज समझ में आता है। प्रकृति के प्रति वे हमेशा से अति संवेदनशील रहे हैं। प्रकृति के सौन्दर्य को उन्होंने अपनी आंखे बनाया और उसके संगीत को अपना हृदय। सर्व के प्रति स्वयं को खोला उस अतिथि को हृदय में बुलाया। पहाड़ों पर अपनी आत्मा को ऊंचाई पर पाया। गहरी घाटियों में उन जैसा गहरा पाया। आकाश का अनन्त विस्तार, तारों का अट्ट मौन और फूलों का असीम सौन्दर्य उनके भीतर उतरता गया। भीतर व्यक्ति मिटता गया और परमात्मा होता गया। प्रकृति से निकटता और प्रेम, अभय और खोज की अदम्य वृत्ति निरर्थक और निराधार नहीं थे वरन् वे किसी अज्ञात प्रयोग का प्यास के आधार थे।

मेट्रिक की परीक्षा सन् १९५१ में, हिन्दी, इंग्रजी, विज्ञान, चित्रकला, भूगोल एवं सामान्य ज्ञान विषयों को लेकर, द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। सामान्य ज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की। शाला की पढ़ाई तथा परीक्षाफल में अन्य साथियों के साथ कोई प्रतियोगिता न थी। उनकी प्रतियोगिता तो स्वयं से थी। प्रतिदिन स्वयं से आगे निकल जाना ही उनका उद्देश्य था। वे प्रतिस्पर्धा को वर्तमान शिक्षापद्धति का प्रधान दोष मानते थे। वे कहते "प्रतिस्पर्धा का मूल ईर्ष्या है। और जिसका आधार ही ईर्ष्या है वह शुभ भी नहीं हो सकती है।" इसी कारण महत्वाकांक्षा कभी भी उनके मन को संचालित नहीं कर सकी।

उच्चशिक्षा हेतु गाडरवारा छोड़ना पड़ा। जबलपुर के हितकारणी महाविद्यालय में प्रवेश लिया। उन्होंने छात्रावास में रहने की अपेक्षा अपनी छोटी बुआ के यहां रहना पसंद किया छोटी बुआ प्रेम और सेवा की जीवित प्रतिमा थीं। निःसन्तान होने से उनकी सेवा और प्रेम का क्षेत्र असीमित था। यहीं अरविन्द भाई और क्रांति बहिन को निकट रहने का सौभाग्य मिला। महाविद्यालय के विभिन्न कार्यक्रमों मे भाग लेने के कारण उनके विचार का प्रभाव क्षेत्र विस्तृत हुआ। वहां अध्ययन के लिये पर्याप्त साहित्य मिला। अध्ययन की गति और तीव्रता चरम सीमा पर पहुंच गई।

उनके तीव्र तर्क और स्वतंत्र चिन्तन के कारण स्वभावत: ही लोगों को चोटें पहुंचना शुरू हुई। उनका न कोई विश्वास था। न श्रद्धा थी। उन्हे कुछ भी स्वीकार न था। वे समस्त धारणाओं, विश्वासों, और विचारों का खंडन करते। उनके तर्क की तीव्र धार के आगे कोई भी धारणा ठहर न पाती। लोग उनसे मिलने में भी भय खाते। निर्भयता से वे समस्त जड़ताओं पर तीव्र प्रहार करते। रजनीश के इसी स्वतंत्र चिन्तन से महाविद्यालय के दर्शनशास्त्र के एक आचार्य को मानसिक आघात पहुंचा। स्वतंत्र चिन्तन की श्रद्धा और विश्वास से हमेशा से अमैत्री रही है। स्वतंत्र चिन्तन को झूठ श्रद्धा और विश्वास ने घातक समझा है। इसी कारण श्रद्धा और आदर के भूखे व्यक्तियों को चोट पहुंचना स्वाभाविक ही है। उन आचार्य महोदय द्वारा विवाद निर्मित कर रजनीश को महाविद्यालय से निकलने की सिफारिस की गई। द्वितीय वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण कर रजनीश ने स्वयं ही महाविद्यालय छोड़ दिया। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वतंत्र चिन्तन का विरोध देख उनका हृदय पीड़ित हो उठा। तभी तो उन्होंने कहा है कि "शिक्षालयों से गुजर कर स्वयं की प्रतिमा को बचा लेने से दुरूह कार्य और कोई भी नहीं है।" होना तो ये चाहिए कि शिक्षा व्यक्ति में स्वतंत्र चिन्तन के बीज बोये किन्तु होता उल्टा ही

है हमारी शिक्षा पद्धति उन्हें नष्ट करने का सारा आयोजन करती है।

बी. ए. प्रथम वर्ष में आपने डी. ए. जैन. महाविद्यालय में एडमीशन लिया। एडमीशन कठिनाई से मिला एवं सशर्त मिला। आचार्य गणों के शिक्षण में शंका उत्पन्न करने की मनाही थी। इस समय परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने से पिताजी ने आगे पढ़ाई का खर्च उठाने में असमर्थता प्रकट की। इस समस्या को सुलझाने के लिये उन्हें स्थानीय दैनिक पत्र "नवभारत" में सहायक सम्पादक के पद पर कार्य करना पड़ा। कार्य प्राप्त करने में कठिनाई नहीं हुई। उनकी योग्यता से सभी प्रभावित थे। भाषण और वादविवाद प्रतियोगिता में भाग लेने के कारण अनेक विद्वान पुरुषों की प्रशंसा प्राप्त कर चुके थे। जबलपुर महाविद्यालयों के प्रतिनिधि बन कर अन्यत्र जाकर उन्होंने अनेक पुरस्कार प्राप्त किये थे। बी. ए. में विषय इन्टरमीजिएट की तरह ही – हिन्दी, अंग्रजी, दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, तथा हिन्दी निबन्ध थे। बी. ए. की परीक्षा सन् १९५५ में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

एम. ए. के अध्ययन के लिये उन्होंने सागर विश्वविद्यालय सागर में प्रवेश लिया। वहां छात्रावास में २ वर्ष वे रहे। ये दो वर्ष अनेक अर्थों में उनके जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों में से है। इस काल में मानो उनका समग्र व्यक्तित्व ही एक क्रांति से होकर गुजरा है। एक ओर तो विश्वविद्यालय के विशाल ग्रंथालय में अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री मिली और दूसरी ओर पहाड़ियों पर बिखरी हुई प्रकृति की अनुपम छटा के बीच और मुक्त आकाश के नीचे प्रकृति का निकट सानिध्य मिला।

वर्षा आती और बादलों से ढंका आकाश आमंत्रण बन जाता। वे घूमने निकल जाते। वर्षा की बूंदों के संघात से वृक्षों की पत्तियों से उठते हुये संगीत में उनका मन थिरक उठता। उनकी हृदय तंत्री झंकृत हो उठती। फिर बाहर भीतर चलता हुआ संगीत एकाकार हो जाता। वे मिट जाते और रह जाता केवल संगीत।

शरद की शीतलता उनके भीतर उतर आती।

पतझड़ का आगमन और फिर वृक्षों का निरावृत्त हो जाना कहीं गहरे में उनके अंतस्थल को छू जाता। विचार झड़ते जाते, धारणायें झड़ती जातीं। मौन और शून्य गहरा होता जाता।

वसंत जाता और कोकिल के गान, चमकते हुये तारे और खिले हुये फूल अनंत गुना हो उनके भीतर प्रतिविम्बित हो जाते।

ग्रीष्म की जलती हुई भूमि अनायास कोई स्मरण बन जाती।

ऐसे वे खोते गये। प्रकृति में लीन होते गये। पर ये खोना सामान्य अर्थों में खोना न था। सजगता और पूर्ण जागरूकता इस लीनता के अभिन्न अंग थे। उस सजग

शून्यता में ही उन्होंने स्वयं को पाया। कहें कि स्वयं को खोकर परमात्मा को पाया। इसी का स्मरण करते हुए एक प्रवचन में उन्होंने कहा था—"मैं शून्य हो गया था। सब भांति की श्रद्धाओं से शून्य। कोई भी मेरी मान्यता न थी—कोई भी विश्वास-कोई भी विचार न था। न स्वीकार, न अस्वीकार कुछ भी न था। बस मैं था। निपट और अकेला और शून्य। और तब कुछ जगा और भरा। वह शून्यता पूर्ण के आगमन के लिए अवकाश बन गई। मैंने पाया कि मैं भर गया हूं। मैंने पाया कि मैं हो गया हूं।"

एम. ए. की परीक्षा यहीं सागर विश्वविद्यालय से सन् १९५७ में दर्शनशास्त्र लेकर प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण की। इसके बाद विश्वविद्यालय की ओर से आपका नाम दक्षिण पश्चिम एशियाई देशों के भ्रमण के लिये चुना गया।

महाविद्यालयों में उन्होंने आचार्य के रिक्त पदों हेतु आवेदन किया। उनकी ख्याति तथा लोकप्रियता के कारण शीघ्र ही उनकी नियुक्ति संस्कृत महाविद्यालय रायपुर में हो गई। एक वर्ष वहां रहने के बाद वे महाकौशल कला महाविद्यालय जबलपुर में आ गये। वे एक अद्‌भुत शिक्षक रहे। वे विद्यार्थियों की जिज्ञासा को जाग्रत कर स्वयं के अनुसंधान हेतु उसे साहस और अभय से भर देते थे। अन्य विषयों के विद्यार्थी भी उनके व्याख्यान सुनने को इतने आतुर रहते कि अक्सर ही वे अपने विषय की कक्षायें छोड़ रजनीश जी की कक्षा में जा बैठते। अगस्त १९६६ तक वे यहीं सेवारत रहे। पश्चात् वे आचार्य पद से मुक्त हो गये—ताकि उनकी सम्पूर्ण शक्ति और समय का उपयोग बृहत्तर मानवता की सेवा में हो सके।

वे आज धर्मचक्र प्रवर्तन के अति कठिन कार्य में व्यस्त हैं। उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य दुखी है क्योंकि :—

उसके जीवन में स्वरों की भीड़ तो बहुत है लेकिन स्वर शून्य संगीत बिल्कुल भी नहीं है।

विचारों का शोरगुल तो बहुत है लेकिन निर्विचार का मौन बिल्कुल नहीं है।

भावनाओं का क्षोभ तो बहुत है लेकिन निर्भाव की समता बिल्कुल नहीं है।

क्रियाओं का तो बाजार है लेकिन अक्रिया का एकान्त बिल्कुल नहीं है।

और अंततः इसलिए कि वह स्वयं तो अपने जीवन में अतिशय है लेकिन परमात्मा उसके जीवन में बिलकुल नहीं है।

हम दुखी हैं। हमारा युग दुखी है। कारण कि हम जानते बहुत हैं, अनुभव कुछ भी नहीं करते। मनुष्य में मस्तिष्क ही मस्तिष्क रह गया है और हृदय विलीन हो गया। है जबकि वास्तविक ज्ञान जानने से नहीं वरन् अनुभव करने से प्राप्त

होता है। और वे आंखे जो जीवन पथ को आलोकित करती हैं मस्तिष्क की नहीं हृदय की होती हैं। हृदय अंधा हो, आंख अंधी हो तो अंधकार बिलकुल स्वाभाविक है। इसीलिये आचार्य श्री व्यक्ति को धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के चक्रव्यूह और उहापोह में नहीं फंसाते वे कहते है कि अंधे आदमी को उपदेश की नहीं उपचार की आवश्यकता होती है। आंख खुल जावे तो वह देख सकता है। इसीलिये आंख खोलने पर ही वे सारा बल देते हैं, आंख खुलने का अर्थ उस पर रुक जाना नहीं है जोकि सामान्यतः दिखाई देता है, वरन् उस तक प्रवेश करना है जो कि दिखलाई पड़ने वाले के पीछे छिपा है। और दिखलाई नहीं पड़ रहा है। इस आंख खुलने का अर्थ है जीवन में सजगता और जागरुकता का अवतरण। वे कहते हैं कि धर्म की साधना धर्म को मानने से नहीं वरन् जीवन को जानने से प्रारंभ होती है। इसी कारण आचार्य श्री देश के कोने कोने में सुसुप्त व्यक्ति चित्त को जागृत करने में व्यस्त हैं। विवेक की पंगुता तथा चेतना की जड़ता को दूर करने के भागीरथी प्रयत्नों में वे संलग्न है। उनके जीवन दर्शन का लाभ विभिन्न प्रदेश के लोगों को मिल सके इस हेतु प्रवचनों के कार्यक्रम एवं साधना शिविरों के आयोजन भिन्न भिन्न स्थानों पर किये जा रहे हैं। उनकी अमृतमयी वाणी निराश हृदयों में आशा का संचार कर रही है। वे दिशाहारायुवा–मानस को दिशा बोध दे रहे हैं। जीवन की प्रत्येक समस्या का सीधी और तीव्र विश्लेषण प्रस्तुत कर मूल कारणों का निराकरण कर रहे हैं। व्यक्ति चित्त की समस्त जड़ताओं पर तीव्र प्रहार कर रहे हैं। जीर्ण शीर्ण मन की टूटी फूटी तथा अनुपयोगी मान्यताओं और रूढ़ियों को विलगकरने की चेष्ट कर रहे हैं। वैचारिक क्रांति के माध्यम से जीवन क्रांति का सूत्रपात कर रहे हैं तथा चेतना के परिवर्तन की दिशा में मौलिक प्रयास कर रहे है मनुष्य के जीवन को नर्क बनाने वाले दर्शन की निरर्थकता तथा थोथापन जाहिर कर रहे हैं, पैसे को ही परमात्मा जानने वालों के बीच "प्रेम ही परमात्मा है" इस सत्य की उद्घोषणा कर रहे हैं। मूलतः मानव जीवन को दिव्य जीवन में परिणित करने का सजग और सतत प्रयास कर रहे हैं। धर्म तथा समस्त विषयों पर भौतिक और अभिनव दृष्टि दे रहे है। तथा नया मूल्यांकन सुझा रहे हैं। वे एक आध्यात्मिक अनुभूति सम्पन्न युगद्रष्टा के रूप में इस अंधकारपूर्ण सदी में आलोक दीप बन हमारा मार्ग दर्शन कर रहे है।

आचार्य श्री स्वयं तो कुछ लिखते नहीं है। जो बोलते हैं अथवा जो पत्र लिखते हैं वही संकलित कर जीवन जागृति केन्द्र बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया

है। उनके साहित्य की एक एक पंक्ति से आत्मानुभूति और आत्मानंद का अमृत झरता सा लगता है। उनकी समाधिस्थ अनुभूति से उठे ये स्वर बहुत बहुमूल्य हैं। उनके अमृत वाङ्मय के सागर में डूबकर अनायास ही सत्य की झलक मिलने लगती है। आनंद के नये क्षितिज खुलते चले जाते हैं। और एक अपरिचित, अज्ञात जगत भीतर अपने द्वार खोलने लगता है। इस साहित्य सागर का एक अमूल्य मोती "साधना पथ" है। इसका एक एक शब्द उनकी अनुभूति के अलोकिक प्रकाश से जगमग है। उनकी मौलिक साधना पद्धति के सभी पहलुओं पर इसमें विचार किया गया है। अक्रिया योग और निर्विचार समाधि के सूक्ष्म विश्लेषण में वे हमें ले गये हैं। हजारों सत्य शोधकों को इससे दिशा मिली है और हजारों की प्रभु प्यास को इससे आंदोलन मिला है।

"क्रांति बीज" उनके पत्रों का संकलन है। इसमें जीवन क्रांति के वे सूत्र हैं जिन्हें मनन करते करते ही व्यक्ति चेतना अपने अंतस में परिवर्तन होता हुआ अनुभव करने लगती है। इसके एक एक शब्द में महान मानव निष्ट क्रांतिके बीज छिपे हैं।

विधायक धर्म की अत्यंत वैज्ञानिक रूपरेखा "सिंहनाद" में प्रस्तुत की गई है। पढ़ कर चिन्तन को नई दिशा मिलती है। धर्म पर उनकी द्रष्टि इसमें पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो गई है।

प्रवचनों और चर्चाओं से वचन की गई बोधकताओं का संकलन "मिट्टी के दिये" है। पढ़कर हृदय आनंद विभोर हो उठता है।

"पथ के प्रदीप" भी पत्रों का ही संकलन है। उनके प्रेम और करुणा से निकले हुये ये पत्र अपने आप में अद्वितीय हैं। अनेक लोगों के जीवन पथ पर उनसे प्रकाश फैला है।

"नये संकेत" अनेक जीवन बिंदुओं पर उनकी अंर्तदृष्टियों का संकलन है। जो न केवल नयी दिशाओं की ओर संकेत ही देता है वरन् गति और त्वरा भी देता है।

अन्य संकलनो में हैं–"नये मनुष्य के जन्म की दिशा," "प्रेम के पंख" "मैं कौन हूं", "अहिंसा दर्शन", "अमृत कण", "सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण, "और "सूर्य की ओर उड़ान"

"ज्योति शिखा" त्रैमासिक पत्र है। तीन माह में देश के विभिन्न कोनों में वे जो बोलत हैं वह संकलित होकर इसमें प्रकाशित हो जाता है।

धर्म वस्तुतः क्या है ? इसे वे अपनी जीवन की ज्योति से हमें समझा रहे

है। वे धर्म के कोरे प्रचारक नहीं है। वे स्वयं धर्म हैं, धर्म ही उनका जीवन है। वे कहते भी हैं कि धर्म को शब्दों से नहीं अनुभूति और आचरण से ही प्रकट किया जा सकता है। क्रांति बीज में हम पढ़ते हैं– धर्म आपका विश्वास नहीं, आपका श्वांस प्रश्वांस हो तो ही सार्थक है। वह तो कुछ है जो आप करते हैं या नहीं करते— जो आप होते हैं या नहीं होते। धर्म कर्म है, वक्तव्य नहीं।

वे हमें धर्म के मूल स्वरूप की ओर ले जाने का श्रमसाध्य प्रयास कर रहे हैं। जो अंधविश्वास के शोषण पर ही जीते हैं उन रूढ़िवादी धार्मिकों, साधु सन्यासियों तथा धर्म के अन्य ठेकेदारों को उनका यह प्रयास प्रिय नहीं लग रहा है। वे इस ज्योति पुरूष के आगमन से तिलमिला उठे हैं।

उनके जीवन का प्रकाश और सुगंधि दूर दूर तक पहुंच रही है। सत्य के खोजियों के लिए तो वे एक तीर्थ ही बन गये हैं। उनकी करुणा और उनके प्रेमपूर्ण हृदय से निकला हुआ एक एक शब्द सीधे हृदय को छूता है। उनकी वाणी में सत्य इतना स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो उठा है। लगता है जैसे वे सत्य के आमने सामने खड़े होकर ही बोल रहे हैं। उनके प्रेम में लोगों को परमात्मा का सानिध्य अनुभव हुआ है और उनकी अमृत वाणी सुनकर लाखों हृदयों की प्यास बुझी है।

आइये, मैं आपको आमंत्रित करता हूं, आप भी इस महान विभूति के व्यक्तित्व को समझने और जीने का प्रयास करें।

शिक्षा : महत्वाकांक्षा और युवा पीढ़ी का विद्रोह

(विद्यार्थियों के बीच माटुंगा में प्रवचन)

संकलन : जयंति मुनि

मनुष्य की आज तक की सारी शिक्षा महत्वाकांक्षा की शिक्षा रही है। वह मनुष्य को ऐसी दौड़ में गति देती है जो कभी भी पूरी नहीं होती। और जीवन भर की दौड़ के बाद भी हृदय खाली का खाली रह जाता है। मनुष्य के मन का पात्र जीवन भर की कोशिश के बाद भी अंत में अपने को खाली पाता है। इसीलिये मैं ऐसी शिक्षा को सम्यक नहीं कहता।

मैं उसी शिक्षा को सम्यक शिक्षा (Right education) कहता हूं, जो मनुष्य की मन को भरने की इस व्यर्थ की दौड़ को समाप्त कर दे। मैं उसी शिक्षा को सम्यक कहता हूं जो महत्वाकांक्षा के इस ज्वर से मनुष्य को मुक्त कर दे। मैं उसी शिक्षा को ठीक शिक्षा कहता हूं जो मनुष्य को इस बुनियादी भूल से छुटकारा दिलाने में सहायक हो जाये। लेकिन ऐसी शिक्षा पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। उल्टे जिसे शिक्षा कहते हैं वह मनुष्य की महत्वाकांक्षा (Ambition) को बढ़ाने का काम करती है। उसकी महत्वाकांक्षा की आग में घी डालती है, उसकी आग को प्रज्वलित करती है, उसके भीतर जोर से त्वरा पैदा करती है, जोर से गति पैदा करती है कि वह व्यक्ति दौड़े और अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में लग जाये। मन की वासनाओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति को समक्ष बनाने की कोशिश करती है शिक्षा, मन की महत्वाकांक्षा से मुक्त होने के लिए नहीं। और इसके स्वाभाविक परिणाम फलित होने शुरू हुए हैं। सारे लोग अगर महत्वाकांक्षी हो जायेंगे तो जीवन एक द्वन्द्व और संघर्ष के अति-

रिक्त कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर सारे लोग अपनी महत्वाकांक्षा के पीछे पागल हो जायेंगे तो जीवन एक बड़े युद्ध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता है। पुराने जमानेके लोग अच्छे नहीं थे। आज के जमाने के लोग बुरे नहीं हो गये हैं। यह भ्रांति है बिल्कुल कि पहले के जमाने के लोग अच्छे थे और आज के लोग बुरे हो गये हैं। यह भी भ्रांति है कि पहले जमाने के युवक अच्छे थे और आज के युवक पतित हो गये हैं और चरित्रहीन हो गये हैं। झूठी हैं ये बातें, इनमें कोई भी तथ्य नहीं है। लेकिन एक फर्क जरूर पड़ा है। पुराने जमाने का जवान शिक्षित नहीं था, उसकी महत्वाकांक्षा बहुत कम थी। आज की दुनिया का युवक शिक्षित है। उसकी महत्वाकांक्षा की अग्नि में घी डाला गया है। वह पागल होकर प्रज्ज्वलित हो उठी है और जितनी जोर से शिक्षा बढ़ती जायेगी उतनी ही जोर से यह विक्षिप्तता और पागलपन भी बढ़ता जायेगा। शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य का पागलपन विकसित हो रहा है।

अतीत के लोग अशिक्षित थे, वे पढ़े लिखे लोग थे। उनकी महत्वाकांक्षा धीमे धीमे जलती थी। आज के युग की शिक्षा ने आदमी को, उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत प्रज्ज्वलित कर दिया है। पहले कभी कोई एकाध आदमी पागल हो जाता था और सिकंदर बनने की कोशिश करता था। अब सब आदमी पागल है और सभी सिकन्दर होना चाहते हैं। और हम उन्हें सिकन्दर और पागल बनाने की इस कोशिश को ही शिक्षा का नाम देते हैं। मैंने पुरानी से पुरानी किताबें देखी हैं और मैं देखकर हैरान हो गया। चीन में संभवतः दुनिया की सबसे पुरानी किताब है जो ६।। हजार वर्ष पुरानी है और उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ है कि आजकल के लोग बिल्कुल बिगड़ गये हैं, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। मैं बहुत हैरान हुआ। वह भूमिका इतनी आधुनिक मालूम पड़ती है कि ऐसा मालूम पड़ता है कि आजकल के किसी लेखक ने किताब लिखी हो। साढ़े छः हजार वर्ष पहले कोई लिखता है कि आजकल के लोग बिगड़ गये हैं। पहले के लोग अच्छे थे! ये पहले के लोग कब थे? आज तक जमीन पर एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें यह लिखा हो कि आजकल के लोग अच्छे हैं। हर किताब कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे। यह पहले की बात बिल्कुल कल्पना (Myth), बिल्कुल असत्य है। अगर पहले के लोग अच्छे थे तो ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध ने किन लोगों को सिखाया कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो। किन लोगों को सिखाई है यह बात? अगर पहले के लोग अच्छे थे तो महाभारत कौन कराता था और सीता को कौन चुरा ले जाता था। और अगर पहले के लोग अच्छे थे तो दुनिया में यह जो उप-

देशक हुए जीससक्राइस्ट, कृष्ण और बुद्ध और कन्फ्यूसियस, इन्होंने किन लोगों के सामने अपनी बातें समझायी। ये किनके लिए रोते थे। इनके हृदय में किनके लिए वेदना थी। ये किनसे कहते रहे कि तुम अच्छे हो जाओ। या तो ये सारे लोग पागल थे या लोग अच्छे ही थे और व्यर्थ उपदेश दिये जाते थे। अगर यहां सभी लोग सच बोलने वाले हों और मैं आकर समझाने लगूं कि आपको सच बोलना चाहिए तो लोग हंसेगे कि आप किसको समझा रहे हैं। यहां तो सभी लोग सच बोलते ही हैं।

दुनियां भर की शिक्षकों की शिक्षाएं यह कहती हैं कि लोग कभी भी अच्छे नहीं थे। जो फर्क पड़ा है वह इस बात में नहीं पड़ा कि लोग बुरे हो गये हैं। फर्क यह पड़ा है कि बुरे लोग शिक्षित हो गये हैं और शिक्षा ने बुरे लोगों को अपनी बुराई से बचाने के लिए कवच का रूप ले लिया है। शिक्षा उनकी बुराइयों को बचाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई को बढ़ाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई की जड़ों को पानी डालने का कारण बन गई है। लोग बुरे नहीं हो गये लेकिन बुरे लोग ज्यादा सबल और ज्यादा शक्तिवान हो गये हैं और उनके हाथ में शिक्षा ने बड़े अस्त्र शस्त्र दे दिये हैं। एक बुरा आदमी हो और उसके पास तलवार न हो और एक बुरा आदमी हो उसके हाथ में एटम बम आ जाय तो जिसके हाथ में एटम बम है वह बहुत बड़ी बुराई कर सकेगा और शायद हम सोचेंगे जिनके पास एटम बम नहीं था वे बड़े अच्छे लोग थे। उनके हाथ में जो था– वह पत्थर थे तो उन्होंने पत्थर फेंके थे और एटम बम उनके हाथ में आ गया तो वे एटम बम फेंक रहे है। फेंकने वाले वहीं के वही हैं। केवल फेंकने वाली चीज की ताकत बढ़ गई है।

आदमी शिक्षित हुआ है और शिक्षा गलत है। आदमी बुरा हमेशा से था। शिक्षा ने बुराई को हजार गुनी ताकत दे दी है। कहते हैं न करेला नीम पर चढ़ जाये तो और कड़वा हो जाता है। बुरे आदमी शिक्षा की नींम पर चढ़ गये। करेला तो पहले से ही कड़वा था और शिक्षा की नीम ने और कड़वा कर दिया है। यह शिक्षा जो आदमी को हम आजतक दिये हैं और यह भी मत सोचना कि आज की शिक्षा ही गलत है, आज तक की सारी शिक्षा गलत रही है। यह भी मत सोचना कि आाज की ही शिक्षा गलत है और यह पश्चिम के लोगों ने आकर शिक्षा गलत कर दी। भूल से मत सोचना। शिक्षा हमेशा गलत रही है। और यह भी मत सोचना कि विद्यार्थी गलत हो

गये हैं। विद्यार्थी और गुरू हमेशा से सभी गलत रहे हैं।

द्रोणाचार्य का नाम हम भलीभांति जानते हैं। अपने एक अमीर शिष्य के पक्ष में गरीब शुद्र का अंगूठा काट लाये थे। वे गुरू थे। एकलव्य से इसलिए अंगूठा मांग लिया था कि अंगूठे दे दे तूं, क्योंकि एकलव्य था शुद्र और गरीब और दरिद्र। और अर्जुन था धनपति, सम्राट, राजकुमार। अगर एकलव्य धनुर्विद्या में बड़ा हो जाय तो अर्जुन को कोई पूछेगा ही नहीं दुनियां में। तो उस गरीब शुद्र लड़के से अंगूठा कटवा लिया ताकि अमीर शिष्य आगे बढ़ जाये। पहले से ही गुरू गरीब शिष्यों के अंगूठे काटते रहे हैं। कोई आज की बात नहीं है। लेकिन एक फर्क पड़ गया। पुराना एकलव्य सीधा सादा था। उसने अंगूठा दे दिया था। नये एकलव्य अंगूठा देने से इन्कार कर रहे हैं। वे कहते हैं हम अंगूठा नहीं देंगे और वे कहते हैं कि ज्यादा कोशिश की तो हम तुम्हारे अंगूठे काट लेंगे। यह फर्क पड़ गया है। इसके अतिरिक्त और कोई फर्क नहीं पड़ा है।

यह जो स्थिति है, यह जो आदमी की आज को दशा है उससे चिन्ता होती है। हर तरफ विद्यार्थी आग लगा रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं, मकान तोड़ रहे हैं, यह कोई सामान्य घटना नहीं है। और यह घटना आज के विद्यार्थियों भर से सम्बन्धित नहीं है यह पांच हजार वर्ष का युवकों का रोष है जो इकट्ठा होकर चरम सीमा पर पहुंच गया है। यह पांच हजार वर्ष की गलत शिक्षा का अंतिम फल है। यह पांच हजार वर्षों के शोषण—यह पांच हजार वर्षों के दमित युवक के मन की पीड़ा और वेदना है और आज उसने वह जगह ले ली है कि अब उस वेदना को कोई ठीक मार्ग नहीं मिल रहा है तो वह गलत मार्गों से प्रगट हो रही है। असल बात यह है कि युवक मकान तोड़ना नहीं चाहता है। कौन पागल होगा जो मकान तोड़ेगा ? क्योंकि मकान अन्ततः किसके टूटते हैं ? बूढ़ों के नहीं टूटते हैं, हमेशा युवकों के ही टूटते हैं। क्योंकि बूढ़े कल बिदा हो जाएंगे। मकान युवकों के हाथ में पड़ेगे लेकिन कौन मकान तोड़ना चाहता है ? कौन कांच तोड़ना चाहता है ? कौन बसें जलाना चाहता है ? कोई नहीं जलाना चाहता। शायद मन के भीतर किन्हीं और चीजों को जलाने की तीव्र भावना पैदा हो गई है और समझमें नहीं आ रहा है कि हम किस चीज को जलायें। तो हम किसी भी चीज को जला रहे हैं। सारे अतीत को जलाने का ख्याल आज की मानस आत्मा के भीतर पैदा हो रहा है और समझमें नहीं आ रहा है कि हम क्या जलायें, हम क्या करें, हम क्या तोड़ दें ? कोई चीज तोड़ने जैसी हो गई है। कोई चीज मिटाने जैसी हो गई है। कोई बिल्कुल

जलाने जैसी हो गई है। हर युग में कुछ चीजें जला देनी पड़ती हैं ताकि वह अतीत से मुक्त हो जाये और आगे बढ़ जाये, ताकि वह परम्पराओं से मुक्त हो जाये और जीवन अतिमान हो सके। नदी जब समुद्र की ओर दौड़ती है तो न मालूम कितने पत्थर तोड़ने पड़ते हैं, कितने मार्ग की बाधाएं हटानी पड़ती हैं, कितने दरख्त गिरा देने पड़ते हैं तब कहीं रास्ता बनता है और नदी समुद्र तक पहुंचती है।

हजारों हजारों साल से मनुष्य की चेतना को रोकने वाली बहुत सी चीजें पत्थरों की दीवाल की तरह खड़ी है। आजकल आदमी ने विचार नहीं किया उन्हें तोड़ डालने का, लेकिन जैसे जैसे मनुष्य की चेतना में समझ, बोध, विचार का जन्म हो रहा है वैसे तीव्र वेदना, एक तीव्र आन्दोलन सारे जगत में प्रगट हो रहा है। युवक नासमझ है। वह कुछ भी तोड़ने को लग गया है। लेकिन मुझे बड़ी खुशी मालूम होती है और मेरे हृदय में बड़ा स्वागत है। कम से कम उसने तोड़ना तो शुरू किया है। आज गलत चीजें तोड़ता है कल ठीक चीजें तोड़ने के लिए हम उसे राजी कर लेंगे। अभागे तो वे युवक थे जिन्होंने कभी कुछ तोड़ा ही नहीं। तोड़ने की सामर्थ्य एक बार पैदा हो जाय तो तोड़ने की शक्ति को दिशा दी जा सकती है। एक बार विध्वंश की शक्ति आ जाय तो उस शक्ति को सृजनात्मक बनाया जा सकता है। क्योंकि स्मरण रहे जो लोग तोड़ ही नहीं सकते वे बना भी कैसे सकते हैं। और ख्याल रहे सृजन का पहला सूत्र विध्वंश है। बनाने के पहले तोड़ देना पड़ता है।

एक गांव था। और उस गांव में एक बहुत पुराना चर्च था। वह चर्च इतना पुराना हो गया था जैसे कि सभी चर्च पुराने हो गये हैं। सभी मंदिर पुराने हो गये हैं। वह बहुत पुराना हो गया था। उसकी दीवालें इतनी जीर्ण हो गई थीं कि उस चर्च के भीतर भी जाना खतरनाक था। वह किसी भी क्षण गिर सकता था। आकाश में बादल आ जाते थे और आवाज होती थी तो चर्च कंपता था। हवाएं चलती थीं तो चर्च कंपता था। हमेशा डर लगता था कि चर्च कब गिर जाएगा। चर्च में जाना तो दूर, पड़ोस के लोगों ने भी पड़ोस में रहना छोड़ दिया था। चर्च किसी भी दिन गिर जाएगा और प्राण ले लेगा। लेकिन चर्च के संरक्षक गांव भर में प्रचार करते थे कि आप लोग चर्च क्यों नहीं चलते हैं? क्या अधार्मिक हो गये हैं आप? क्या ईश्वर को नहीं मानते हैं? लेकिन कोई भी इस बात को नहीं पूछता था कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि चर्च बहुत पुराना हो गया है और उसके नीचे केवल वे ही

जा सकते हैं जिनकी कब्र में जाने की तैयारी है, जो बिल्कुल बूढ़े हो गये हैं, जिनको अब मरने से कोई डर नहीं है। जवान उस चर्च में नहीं जा सकते जो इतना गिरने के करीब है। आखिर संरक्षक घबरा गये और उन्होंने एक कमेटी बुलायी और सोचा कि अब अगर कोई आता ही नहीं इस पुराने चर्च में तो उचित होगा कि हम नया चर्च बना लें। उन्होंने चार प्रस्ताव पास किये उस कमेटी में उन पर जरा गौर कर लेना क्योंकि उनका बड़ा अर्थ है।

उन्होंने चार प्रस्ताव किए। पहला संकल्प और पहला प्रस्ताव उन्होने यह किया– सर्वसम्मत से उन्होंने यह तय किया कि पुराने चर्च को गिरा देना चाहिए और सबने कहा कि यह बिल्कुल ठीक है। सब एक मत से राजी हो गये। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने यह किया कि हमें इसकी जगह एक नया चर्च बनाना चाहिए लेकिन ठीक उसी जगह जहां पुराना चर्च खड़ा है और ठीक वैसा ही जैसा पुराना चर्च है। इस पर भी सभी लोग राजी हो गये। तीसरा उन्होंने प्रस्ताव यह किया कि हमें पुराने चर्च में जो जो सामान लगा है उसी सामान से नया चर्च बनाना है। दरवाजे भी वही, इंटें भी वही। पुराने चर्च के सारे सामान से यह नया चर्च बनाना है। इस पर भी सब लोग राजी हो गये। और चौथा प्रस्ताव उन्होंने यह पास किया कि जबतक नया चर्च न बन जाये तबतक पुराना गिराना नहीं है।

वह चर्च अभी भी खड़ा हुआ है। वह हमेशा खड़ा रहेगा। वह कभी नहीं गिर सकता क्योंकि वे प्रस्ताव पास करनेवाले बड़े होशियार थे।

आदमी की जिन्दगी पर भी पुराने चर्चों का बहुत भार है। पुरानी परम्पराओं का, पुराने मंदिरों का, पुराने शास्त्रों का, पुराने लोगों का। अतीत जकड़े हुए है मनुष्य के भविष्य को। पीछे की तरफ हमारी टांग कसी हुई है किन्हीं जंजीरों से और आगे की तरफ हम मुक्त नहीं हो पाते तो प्राण तड़फड़ा उठते हैं कि तोड़ दो सब। और जब कोई उत्सुक हो जाता है तोड़ने को तो वह यह भूल जाता है कि हम क्या तोड़ रहे हैं।

युवक तोड़ रहे हैं यह तो खुशी की और स्वागत की बात है लेकिन गलत चीजें तोड़ रहे हैं यह दुख की बात है। कुछ और जरूरी चीजें हैं जो तोड़नी चाहिए। मुल्क के नेता और मुल्क के अगुवा यही चाहते हैं कि युवक गलत चीजें तोड़ते रहें ताकि उन्हें कहीं ठीक चीजें तोड़ने का ख्याल न आ जाये। वे भी यही चाहते हैं, यद्यपि वे समझाते हैं कि चीजें मत तोड़ो, बस में आग मत लगाओ, मकान मत जलाओ, वे समझाते हैं कि यह बहुत बुरा हो रहा है लेकिन

हृदय के बहुत गहरे कोने में वे यही चाहते हैं कि युवकों का मन व्यर्थ की चीजें तोड़ने में लगा रहे ताकि सार्थक चीजों के तोड़ने तक उनका ख्याल न चला जाये। इसलिए जब कोई गलत चीजें तोड़ रहा है तो वह यह न सोचे जाये। कि उससे जिन्दगी बनेगी। वह गलत लोगों के हाथ में खेल रहा है इसका उसे पताही नहीं है। नेता हमेशा मुल्क की चेतना को, देशके मन को गलत चीजों में उलझा देना चाहते हैं। और इस बात के पीछे बहुत गहरी चालाकी हैं। चालाकी यह है कि– अगर लोगों को गलत चीजों में उलझा दिया जाय तो ठीक चीजें तोड़ने से उन्हें रोका जा सकता है। उनकी ताकत व्यर्थ की चीजों को नष्ट करने में समाप्त हो जाती हैं। और न केवल ताकत समाप्त हो जाती है बल्कि व्यर्थ चीजें तोड़कर वे खुद पश्चात्ताप (Repentance) से, भर जाते हैं और तब उनकी तोड़ने की हिम्मत क्षीण हो जाती है। उनका अन्तःकरण कहने लगता है, यह सब गलत हो रहा है। उनके पास भी यह आत्मबल नहीं होता है कि वे यह कह सकें कि हमने इस बस में आग लगाई है तो कुछ ठीक किया है। उनकेपास यह आत्मबल नहीं हो सकता है। तो उनका आत्मबल क्षीण होता है। गलत चीजें टूटने से कुछ बिगड़ता नहीं और उनका आत्मबल नष्ट होता है और उनकी तोड़ने की क्षमता नष्ट होती है। उनकी तोड़ने की शक्ति व्यर्थ की चीजों में उलझकर समाप्त हो जाती है। और उनसे ज्यादा से ज्यादा खतरा तभी तक होता है जबतक वे विश्वविद्यालय में पढ़ रहे हैं। उसके बाद उनसे कोई खतरा नहीं होता, क्योंकि उनकी पत्नियां, उनके बच्चे उनके सारे खतरे के लिए शॉक एब्जार्बर का काम करने लगेगें। फिर उनसे कोई खतरा नहीं है। एक बार उनकी शादी हो जाये तो उनसे कोई खतरा नहीं है। और मैं आपसे यह भी कह देता हूं, जैसा मैंने आपसे कहा कि युवक शिक्षित हो गया है इसलिए खतरा बढ़ा है। दूसरा बात शादी की उम्र बड़ी हो गई है, इससे भी खतरा बढ़ा है। क्योंकि शादियां बहुत पुराने दिनों से आदमी के भीतर विद्रोह की क्षमता को तोड़ने का काम करती रही हैं जो विद्रोही चेतना है उसको नष्ट करने का काम करती रही है। पुराने लोग इस मामले में बड़े होशियार थे। दस बारह साल के लड़कियों और लड़कों को विवाहित कर देते थे। उसके बाद उनसे विद्रोह की कोई सम्भावना नहीं रह जाती थी वे उसी वक्त से बूढ़े होने शुरू हो जाते थे। असल में वे जवान हो ही नहीं पाते थे।

सारी दुनिया में शिक्षा के साथ दूसरा तत्व विवाह की उम्र लम्बी हो गई। २४ वर्ष और बीस वर्ष के युवक और युवतियां अविवाहित हैं। ये दिन विद्रोह की क्षमता के विकसित होने के क्षण हैं। उनके ऊपर कोई बन्धन नहीं। ये क्षण हैं,

जब वे विद्रोह को सोच सकते हैं। जब उनकी आत्मा किन्हीं चीजों को गलत कह सकती है।

अमरीका के मनोवैज्ञानिकों ने सलाह दी है कि अमरीका में फिर छोटी उम्र में शादी शुरू कर देनी चाहिए। अगर युवकों को बचाना है कि चीजों को तोड़ न दें तो उनकी शादी जल्दी हो जानी चाहिए। क्योंकि तब उनकी सारी ताकत नोंन, तेल, लकड़ी को जुटानें में समाप्त हो जाती है। फिर उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। जवानी में वे नोंन तेल लकड़ी जुटाते हैं। बुढ़ापे में स्वर्ग, परलोक वगैरह की व्यवस्था के लिए भजन कीर्तन करते हैं। फिर उनसे कोई विद्रोह नहीं हो सकता। विद्रोह के क्षण हैं उनके पच्चीस वर्ष पहले के क्षण। दुनिया में जो इतनी चीजें टूट रही हैं उसके पीछे ये कारण हैं। लेकिन मेरे मन में इससे दुःख नहीं है कि चीजें टूट रही हैं। मैं तो मानता हूं कि ये बड़े शुभ लक्षण हैं, ये बड़े शुभ समाचार हैं। दुःख इस बात का है कि गलत चीजें टूट रही हैं। बहुत जरूरी चीजें हैं जिन्हें तोड़ देनी चाहिए और उन जरूरी चीजों में से पहली चीज, यह है कि हमें उस दुनियां को जो महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी है, बदल देना चाहिए। महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी हुई दुनियां को तोड़ देना चाहिए। और एक गैर महत्वाकांक्षी (Non-ambitious) समाज का निर्माण करना चाहिए, यह क्यो ? यह इसलिए कि महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ा हुआ जगत हिंसा और दुख और पीड़ा का ही जगत हो सकता है। उसमें न तो प्रेम हो सकता है, न आनन्द हो सकता है, न शांति हो सकती है।

महत्वाकांक्षा का अर्थ क्या होता है ? महत्वाकांक्षा का अर्थ होता है दूसरों से आगे निकल जाने की दौड़। बचपन से हमें यही सिखाया जाता है, पहली कक्षा से यही सिखाया जाता है कि दूसरे से आगे निकल जाओ, प्रथम आ जाओ। प्रथम आना ही एक मात्र मूल्य है। जो युवक प्रथम आ जाएगा, जो बच्चा पहला आ जाएगा वह पुरस्कृत होगा, सम्मानित होता। जो पीछे छूट जायेंगे वह अपमानित हो जायेंगे। यह दुनियां इतनी उदास कभी नहीं होती, लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हम कैसी मनोवैज्ञानिक महत्वाकांक्षाए रख रहे हैं मनुष्य के लिए। एक स्कूल में अगर हजार बच्चे पढ़ते हैं तो कितने बच्चे प्रथम आयेंगे ? दस बच्चे प्रथम आयेंगे और नौ सौ नब्बे बच्चे पीछे रह जाएंगे। दुनियां कौन बनाता है ? प्रथम होने वाले लोग दुनियां बताते हैं या हारे हुए, पीछे रह जाने वाले लोग दुनियां बनाते हैं ? दुनियां किनसे बनती है ? दुनियां के संगठक कौन हैं ? दुनियां के संगठक हैं पराजित लोग। हारे हुए लोग, दुखी लोग जो प्रथम नहीं आ सके वे लोग। और जब पहली ही कक्षा से किसी बच्चे को निरन्तर निरन्तर पीछे रहना पड़ता है तो उसके जीवन में आत्मग्लानि, हीनता,

दीनता सब पैदा हो जाती है । ये दीनहीन लोग दुनियां के संगठक हैं । इनकी बड़ी संख्या होगी । ये दुनियां को बनायेंगे । जिनको जीवन ने कोई सम्मान नहीं दिया, कोई आदर नहीं दिया ।

आप कहेंगे कि कौन इन्हें रोकता था ? ये भी प्रथम आ सकते थे । ठीक कहते हैं आप । कोई नहीं रोकता है । ये भी प्रथम आ सकते थे । लेकिन तीस लड़के में कोई भी प्रथम आये, एक ही लड़का प्रथम आयेगा । उन्तीस हमेशा पीछे रह जायेंगे । उन्तीस दुखी होंगे । एक प्रसन्न होगा । कोई भी एक प्रसन्न हो, यह सवाल नहीं है कि कौन एक प्रसन्न होता है । लेकिन उन्तीस दुखी होंगे । उन्तीस के दुख पर एक व्यक्ति का सुख निर्भर होगा और उन्तीस बच्चे दुख लेकर जीवन में प्रविष्ट होंगे । हारे हुए लोग, पराजित लोग । एम्बीसन ने सारी दुनियां को दीनहीन बना दिया है । एक ऐसा समाज और एक ऐसी शिक्षा और एक ऐसी संस्कृति चाहिए जहां प्रथम आने के पागलपन से आदमी का छुटकारा हो गया हो, नहीं तो दुनियां में युद्ध नहीं रुक सकते, क्रोध नहीं रुक सकता, और जब कोई आदमी बहुत क्रोध और दुख और विषाद से भर जाता है तो वह सारी दुनिया से बदला लेता है । इस बात का कि मुझे दुख दिया है इस दुनिया ने । मुझे कोई सम्मान नहीं दिया, मुझे कोई पुरस्कार नहीं दिये, मुझे कोई आदर नहीं दिया, मुझे कोई पदवियां नहीं दीं । तो सारी दुनियां के प्रति क्रुद्ध हो उठता है, क्रोध से भर जाता है । ये क्रोध निकल रहा है सब तरफ से बह बहकर ।

मेरी दृष्टि में क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि हम एक ऐसी शिक्षा विकसित करें जो व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा में नहीं, आत्म-परिष्कार में ले जाती हो । इन दोनों बातों में भेद है । इस सूत्र को ठीक से समझ लेना जरूरी है । एक स्थिति तो यह है कि मैं दूसरे लोगों से आगे निकलने की कोशिश करूं और दूसरी स्थिति यह है कि मैं रोज अपने आपसे आगे निकलने की कोशिश करूं । मैं जहां कल था, आज उससे आगे बढ़ जाऊं । मेरी तुलना मेरे अतीत से हो, किसी पड़ोसी से नहीं । मैं रोज खुद को पार करूं, खुद को अतिक्रमण करूं । कल सूरज ने मुझे जहां छोड़ा था डूबते वक्त, आज का उगता सूरज मुझे वहीं न पाये । मैं आगे बढ़ जाऊं । कल रात सूरज बिदा हुआ था । खेतों में जो पौधे लगे थे आज सुबह उनको वहीं नहीं पायेंगे । वे आगे बढ़ गये हैं, लेकिन किससे आगे बढ़ गये हैं ? किसी दूसरे से ? नहीं अपने से आगे बढ़ गये हैं । किसी दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है प्रकृति में । सारी प्रकृति किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा में नहीं है सिवाय मनुष्य को छोड़कर । एक गुलाब का फूल खिल रहा है एक बगिया में । उसे कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है कि चमेली का फूल कैसे खिला है और कमल का फूल कैसे खिला है । गुलाब का फूल खिल रहा है

अपनी खुशी में । उसका पुष्पित होना उसकी अपनी आंतरिक बात है। आदमी भरके फूल गड़बड़ हो गये हैं। वह हमेशा दूसरों की तरफ देख रहे हैं कि दूसरे के खिलने से मैं कितना आगे निकलता हूं और वह कितने पीछे रह जाता है। अपनी खुद की सेल्फ फूलावरिंग का कोई ख्याल ही नहीं है। इससे एक पागलपन पैदा होता है। वह पागलपन ऐसा है कि अगर मैं किसी बगिया में चला-जाऊं और गुलाब से कहूं कि पागल क्या तू गुलाब ही होकर नष्ट हो जाएगा ? कमल नहीं होना है ? कमल का फूल बहुत शानदार होता है। कमल हो जा। पहली तो बात यह है कि गुलाब मेरी बात ही नहीं सुनेगा। वह हवाओं में डोलता रहेगा, मेरी बात उसे सुनाई नहीं पड़ेगी, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि किसी ने भी बुलाया और सुनने को आ गये। फूल इतने नासमझ नहीं होते कि सुनने को राजी हो जांये। अव्वल तो फूल सुनेंगे नहीं, लेकिन हो भी सकता है, आदमी के साथ रहते रहते उसकी बीमारियां फूलों को भी लग सकती हैं, । बीमारियां संक्रामक होती हैं। बीमारियां छूत की होती हैं। हो सकता है आदमी की बगिया में लगे लगे फूलों में भी गड़बड़ आ गई हो। वह भी उपदेश सुनने लगे हों तो मेरी बात अगर वह फल मान लेंगे तो फिर क्या होगा ? उस गुलाब के फूल को अगर मेरी बात पकड़ गई, यह ज्वर पकड़ गया। कि मुझे कमल का फूल हो जाना है या कमल के फूल से आगे निकल जाना है तो पागल हो जायगा वह गुलाब का पौधा। फिर उसमें फूल पैदा नही होंगे। क्योंकि गुलाब से गुलाब ही पैदा होते हैं, कमल पैदा नहीं हो सकता। यह उसकी आन्तरिक विवशता है, वह कुछ और नहीं हो सकता। गुलाब का फूल गुलाब ही हो सकता है। चमेली चमेली ही हो सकती है, चम्पा चम्पा हो सकती है, घास का फूल घास का फूल हो सकता है, कमल का फूल कमल का फूल हो सकता है। लेकिन अगर यह पागलपन चढ़ जाय कि चम्पा चमेली होने की कोशिश करे, गुलाब कमल होने की, फिर उस बगिया में फूल पैदा होने बन्द हो जायेंगे। गुलाब कमल तो हो ही नहीं सकता है, लेकिन कमल होने की कोशिश में गुलाब भी नहीं हो सकता।

आदमी की बगिया में फूल इसीलिए पैदा होने बन्द हो गये है। कांटे ही कांटे पैदा होते है। फूल पैदा होते ही नहीं। क्योंकि कोई आदमी स्वयं होने की कोशिश में नहीं है। हर आदमी कोई और होने की कोशिश में है। किसी और को पार करने की चेष्टा में लगा हुआ है। हर आदमी को खुद होने का ख्याल, शिक्षा नहीं देती। हमारी शिक्षा कहती है, देखो वह आदमी आगे निकल गया है। तुमको भी वैसे हो जाना है, देखो वह आदमी दिल्ली पहुंच गया है,

तुमको भी दिल्ली पहुंच जाना है। देखो वह आदमी पहुंचा जा रहा है आगे, तुम कहां पीछे रहे जाते हो। दौड़ो। सब तरफ से महत्वाकांक्षा पैदा की जाती है – राजनैतिक रूप से महत्वाकांक्षा पैदा करते हैं कि देखो राधाकृष्णन् स्कूल में शिक्षक थे। वे राष्ट्रपति हो गये। अब सारे शिक्षकों में आग पैदा करो कि तुम भी दौड़ो और राष्ट्रपति हो जाओ। तुम भी पागल हो जाओ कि देखो राधाकृष्णन शिक्षक था राष्ट्रपति हो गया सब शिक्षक दिवस मनाओ कि बड़े सम्मान की बात हो गई कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया।

मुझे भी एक शिक्षक दिवस पर भूल से बोलने के लिए बुला लिया गया। भूल से कोई बुला लेता है बोलने के लिए। तो मैंने उन शिक्षकों को कहा कि मित्रो अभी शिक्षक दिवस मनाने का वक्त नहीं आया है। एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाय इसमें शिक्षकों का कौन सा सम्मान है ? जिस दिन कोई राष्ट्रपति कहे कि मैं स्कूल में आकर शिक्षक होना चाहता हूं उस दिन शिक्षक दिवस मनाना। उस दिन कहना कि हम धन्य हुए कि एक राष्ट्रपति ने कहा है कि हम शिक्षक होने को तैयार हैं। लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति होना चाहे इसमें शिक्षक का क्या सम्मान है ? इसमें राजनीतिज्ञ का सम्मान है, पद का सम्मान है, दिल्ली का सम्मान है, राज्य का सम्मान है। इसमें शिक्षक का कौन सा सम्मान है ? हम कहते हैं देखो यह हुआ जा रहा है तुम भी दौड़ो। राजनैतिक रूप से हम आदमी को ज्वर से भरते हैं। दौड़ो, आगे दौड़ो। दूसरे को पीछे छोड़ो और आगे बढ़ जाओ। ऐसे ही यह हम धार्मिक रूप से, नैतिकरूप से लोगों को सिखलाते हैं कि गांधी बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, महावीर बन जाओ। ये झूठी बातें हैं। जहर फैला रहे हैं आदमी के दिमाग में। कोई आदमी कभी गांधी बन सकता है ? कोई आदमी कभी बुद्ध बन सकता है ? और बन सके तो भी बनने की जरूरत कहां है। एक आदमी काफी है अपने जैसा। दूसरे आदमी को वैसे होने की कोई जरूरत नहीं है। एकगांव में अगर एक ही जैसे बीस हजार गांधी पैदा हो जायं तो उस गांव की मुसीबत समझ सकते हैं। उस गांव में इतनी ऊब पैदा हो जाएगी, इतनी घबराहट पैदा हो जाएगी कि लोग आत्म-हत्या कर लेंगे। जीना मुश्किल हो जाएगा। एक गांधी बहुत प्यारे हैं। एक बुद्ध बहुत अद्भुत हैं। एक राम बहुत शानदार हैं। एक कृष्ण बेमुकाबला, कोई मुकाबला नहीं है उनका। बड़े खूबी के लोग हैं, लेकिन अगर एक ही गांव में एक ही जैसे राम ही राम धनुष बाण लिये हुए खड़े हों तो हो गई कठिनाई। रामलीला करनी हो तब तो ठीक है लेकिन अगर असली मामला हो तो बहुत गड़बड़ है।

कोई आदमी दोबारा दोहराये जाने की जरूरत नहीं है। पुर्नावृत्ति

(Repetition) की कोई जरूरत नहीं है। हर आदमी खुद होने को पैदा होता है, कोई और होने को पैदा नहीं होता। लेकिन अब तक हम शिक्षक को, शिक्षा को इस बात के लिए राजी नहीं कर पाये कि वे बच्चों से कहसकें कि तुम कुछ और होने की कोशिश मत करना, तुम खुद हो जाना।

जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है वह है स्वयं होने की क्षमता को उपलब्ध हो जाना। और जो आदमी दूसरे जैसे होने की कोशिश करेगा उस आदमी का पागल हो जाना सुनिश्चित है। क्योंकि दूसरा वह हो नहीं सकता इसलिए दुनिया में जितनी यह शिक्षा बढ़ती है, आदर्श बढ़ते हैं उतना ही पागल-पन बढ़ता है। इसमें किसी और का कसूर नहीं। शिक्षा बुनियादी रूप से गलत है। जितना आदमी शिक्षित होता है उतना दूसरे होने की दौड़ में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं। कोई बन जाऊं, मैं कुछ और हो जाऊं। खुद से स्वयं से उसकी कोई तृप्ति नहीं होती। वह कोई और होना चाहता है। जब भी कोई आदमी कोई और होना चाहता है तब आदमी अपने होने से च्युत हो जाता है। वह मार्ग से भटक जाता है, वह कुछ और होने की दौड़ में जो हो सकता था वह नहीं हो पाता है और तब जीवन में दुख और पीड़ा पैदा होती है।

अगर कोई पूछे कि पागलपन की क्या परिभाषा है, विक्षिप्त का क्या मतलब है तो मेरी दृष्टि में पागल होने की एक ही परिभाषा है। जो आदमी स्वयं से भिन्न हो जाता है वह आदमी पागल है। और जो आदमी स्वयं हो जाता है वह आदमी स्वस्थ है। स्वयं हो जाना स्वस्थ होना है। बस और कोई स्वास्थ्य का मतलब का नहीं होता है। हिन्दी का जो शब्द है स्वास्थ्य, वह तो शब्द ही बहुत अद्भुत है। स्वास्थ्य का मतलब है स्वयं में सिथित जो स्वयं में खड़ा हो गया वह स्वस्थ है। स्वस्थ का मतलब है जो स्वयं में खड़े हो गये हैं और वह अस्वस्थ है जो स्वयं से भटक गया। यहां वहां चला गया। हम सारे लोग स्वयं से भटकाये जा रहे हैं। हम स्वयं में स्थित होने के लिए दीक्षित नहीं किये जा रहे हैं। इससे एक विक्षिप्तता पैदा हो रही है, पागलपन पैदा हो रहा है।

नेहरू जबतक जिन्दा थे, हिन्दुस्तान में दस पच्चीस लोग थे जिनको यह ख्याल पैदा हो गया था कि हम नेहरू हैं। मेरे छोटे से गांव में एक आदमी था। उनको वह वहम पैदा हो गया था कि वे जवाहरलाल नेहरू हैं। नेहरू एक पागलों की जेल में देखने गये थे। एक पागल वहां स्वस्थ हो गया था, ऐसा मुश्किल से

होती है। स्वस्थ तो अक्सर पागल होते हैं लेकिन पागल कभी स्वस्थ नहीं होता है। लेकिन ऐसी दुर्घटना वहां घट गई थी, ऐक्सीडेन्ट हो गया था। एकपागल ठीक हो गया था और नेहरू उसको देखने गये थे, पागलखाने में। तो पागलखाने के अधिकारियों ने सोचा कि नेहरू के हाथ से ही उसको पागलखाने से छुटकारा और मुक्ति दिलवायी जाय। नेहरू भी बहुत खुश थे। उन्होंने कहा यह आदमी ठीक हो गया है। उससे मिलकर नेहरू ने पूछा कि तुम ठीक हो गये हो तो उसने कहा, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। तीन साल पहले मैं बिल्कुल पागल था आप कौन हैं महाशय? तो नेहरू ने कहा, मुझे नहीं जानते? मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। वह आदमी खूब हंसने लगा। तीन साल आपभी यहां रह जायें तो ठीक हो जायें। तीन साल पहले मुझे भी यही स्थाल पैदा हो गया था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। तीन साल में मैं बिल्कुल ठीक हो गया।

जब भी किसी आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं कोई और हूं तो समझ लेना कि वह पागल हो गया है। और जब भी कोई आदमी इस कोशिश में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं तो समझ लेना कि पागलपन की यात्रा शुरू हो गई है। इस शिक्षा नें मैन काइन्ड को मैड काइन्ड में बदल दिया है। आदमियत एक बड़ा पागलखाना हो गई है। सारी जमीन पर पागलों का बड़ा समूह पैदा हो गया है फिर अगर ये पागल आग लगा दें, मकान तोड़ दें तो नाराज मत होइए। इनको हमने पागल बनाया है। हमने इन्हें इनकी आत्मस्थिति से च्युत किया है। यह जो हो सकते थे वह होने के लिए हमने इन्हें तैयार नहीं किया और जो नहीं हो सकते थे उसकी तरफ हमने इनको दौड़ाया है। आदमी का मस्तिष्क इतने सूक्ष्म तन्तुओं से बना है, आदमी का मन इतना नाजुक है कि उसमें जरा भी गड़बड़ करें तो सब नुकसान हो जाता है। आदमी का मन बहुत कोमल है। आदमी की छोटी सी खोपड़ी में करोड़ों रेशे हैं। अगर आदमी की खोपड़ी के रेशों को निकालकर हम कतार में फैला दें तो पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लेंगे। एक आदमी की खोपड़ी में इतने रेशे हैं। इतने बारीक सेल, इतने बारीक स्नायु। उनसे यह छोटा सा मस्तिष्क करोड़ों स्नायुओं से मिलकर बना है। इसमें जरा सी गड़बड़ी, और सारी मशीन बहुत डेलिकेट है सब गड़बड़ हो जाती है। आश्चर्य है यह। अब तक सारे मनुष्य पागल क्यों नहीं हो गये। आश्चर्य यह नहीं है कि कुछ लोग पागल हो जायें। आदमी के साथ जो किया जा रहा है, आदमी के साथ जो अनाचार हो रहा है, आदमी के साथ जो व्यभिचार हो रहा है, जो बलात्कार हो रहा है आदमी के मन के

साथ जो किया जा रहा है उससे अगर सारे लोग पागल हो जायें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि आदमी को आत्मविज्ञान में दीक्षित नहीं किया जा रहा है और पराये जैसे होने की दौड़ में दूसरे को पार करने के पागलपन में दिशा और धक्के दिये जा रहे हैं। इन सारे धक्कों से यह उपद्रव पैदा हो गया है। युवकों को शिक्षा देने से कुछ भी नहीं होगा। शिक्षा को आमूल ही बदल देना जरूरी है। एक पूरी तरह क्रान्तिकारी कदम उठाना जरूरी है कि हम मनुष्य की महत्वाकांक्षा को ही नहीं बल्कि मनुष्य के भीतर जो छिपी हुई सम्भावनाएं हैं उनके पुरस्कार को ध्यान में रखें। मनुष्य कहां पहुंचे यह सवाल नहीं है। मनुष्य जो है वह कैसे प्रगट हो जाये यह सवाल है। मनुष्य किसी मंजिल को छू ले यह सवाल नहीं है। मनुष्य के भीतर कुछ सम्भावना रूप में (Potentially) छिपा हुआ है जैसे बीज के भीतर पौधा छिपा हुआ होता है। बीज को हम बो देते हैं बगीचे में। माली बीज में से पौधे को खींच खींचकर निकालता नहीं है और अगर कोई माली खींच खींच कर पौधे को निकाल लेगा तो समझ लेना कि उस पौधे की क्या हालत होने वाली है। पौधा निकलता है। माली तो सिर्फ अवसर जुटा देता है। पानी डाल देता है। बीज डाल देता है, खाद डाल देता है, बागुड़ लगा देता है और फिर चुपचाप प्रतीक्षा करता है कि पौधा निकले। पौधा वह कभी निकालता नहीं है। लेकिन हम आदमी में से पौधे निकाल रहे हैं। उनको हम विश्वविद्यालय कहते हैं। विद्यालय कहते हैं। उसमें से आदमी के बीज में से हम जबर्दस्ती पौधा खींच रहे हैं। बाप की मर्जी से खींचा जा रहा है। कोई पौधा मां की मर्जी से खींचा जा रहा है, कोई गुरु की मर्जी से खींचा जा रहा है। इनको इंजीनियर बनाओ, इनको कवि बनाओ, इनको डाक्टर बनाओ। कोई यह पूछ ही नहीं रहा है कि इसके भीतर छिपा क्या है? यह क्या होने को पैदा हुआ है? मां कहती है इसको इंजीनियर बनाना है।

मैं एक घर में ठहरा हुआ था एक लड़के ने कहा मुझे बचाइये। मैं पागल हो जाऊंगा मैंने कहा क्या मामला है। उसने कहा मेरी मां कहती है इंजीनियर बनो। मेरे बाप कहते हैं डाक्टर बनो और दोनों इस तरह खींच रहे हैं मुझे कि न मैं इंजीनियर बन पाऊंगा, न मैं डाक्टर बन पाऊंगा और मैं जो बन जाऊंगा उसका जिम्मा किसी पर भी नहीं होगा। क्योंकि वे दोनों मुझे दो बनाना चाहते हैं। बच्चे खींचे जा रहे हैं, जबरदस्ती खींचे जा रहे हैं। बच्चों में कोई वृद्धि कोई विकास नहीं होता। बच्चे को जबरदस्ती तनाव देकर हम उनमें से कुछ पैदा

करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके पहले कि उनके भीतर कुछ पैदा हो, हम जबरदस्ती खींच तानकर उन्हें तैयार करते हैं फिर अगर वे विरूप हो जाते हैं, उनका जीवन एक कुरुपता बन जाता है। उनका जीवन सौन्दर्य खो देता है और आनन्द खो देता है तो फिर हम पीड़ित और परेशान होते हैं और पूछते हैं कलियुग आ गया है क्या? लोग खराब हो गये हैं क्या? फिर हम अपनी पुरानी किताबों में खोजते हैं जिनमें लिखा हुआ है कि हां, ऐसा वक्त आयेगा जब लोग खराब हो जाएंगे। तब हम निश्चिन्त हो जाते हैं। तो ठीक है, भविष्य वाणी ठीक हो गई है। ऋषि महात्मा बिल्कुल ठीक ही कहते थे कि जमाना खराब हो जाएगा। यह खराब का जमाना आ गया है। नहीं, यह खराब जमाना लाया गया यह आया नहीं है और इसे हम रोज ला रहे हैं। असल में आसमान से कुछ भी नहीं टपकता है। हम जो लाते हैं वह आता है। हमने यह स्थिति लायी है और इस सारी स्थिति के पीछे मनुष्य के मन के सहज विकास (Spontaneoresgrowth) का कोई ध्यान नहीं है। खींचने का ध्यान है। खींचो और आदमी को कुछ बनाओ। इसको तोड़ डालो। हम इन्कार कर दें उस शिक्षा से जो आदमी के साथ जबरदस्ती कर रही है और कह दें यह कि चाहे हम अशिक्षित रह जायेंगे वह बेहतर है, लेकिन हम जबरदस्ती आत्मा के खींचे जाने को बरदास्त नहीं करेंगे। अशिक्षित होने से कुछ भी नहीं बिगड़ता है। हजारों साल तक आदमी अशिक्षित रहा, क्या बिगड़ गया। वसे कई लिहाज से फायदा था। अशिक्षित आदमी ने न एटम खोजा न हाइड्रोजन बम खोजा। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा सौन्दर्य में जिया, हमसे ज्यादा शान्ति में जिया, हमसे ज्यादा आनन्द में जिया। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा स्वस्थ जिया तो शिक्षित होने से क्या हो जाने वाला है? लेकिन अगर ठीक से शिक्षा मिले तो बहुत कुछ हो सकता है। अगर तीन चुनाव हों आदमी के सामने—गलत शिक्षा, ठीक शिक्षा और अशिक्षा—तो मैं कहता हूं अगर गलत शिक्षा और अशिक्षा में से चुनना हो तो अशिक्षा चुननी चाहिए। अशिक्षित रह जाना बुरा नहीं है लेकिन अगर ठीक शिक्षा हो सके तो जरूर बड़ा सौभाग्य है। और शिक्षा ठीक हो सकती है।

पहली बात शिक्षा को महत्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा के केन्द्र से हटा देना चाहिए। उसकी जगह आत्मपरिष्कार और आत्म उन्नति और स्वयं के सहज विकास पर बल देना चाहिये और इसकी फिक्र छोड़ देनी चाहिए कि हर आदमी इंजीनियर बने, हर आदमी डाक्टर बने। हो सकता है कोई आदमी अच्छा चमार बनने को पैदा हुआ हो। और अगर अच्छा चमार डाक्टर बन गया तो बड़े खतरे

हैं। वह आदमी के साथ आपरेशन तो करेगा लेकिन वैसे जैसे जूते के साथ करता है। और हो सकता था वह अच्छा बढ़ई बनता। जरूरत है बढ़ई की भी, चमार की भी। लेकिन हमने जैसी गलत समाज व्यवस्था बनाई है उसमें हम डाक्टर को बहुत ऊंचा पद देते हैं। बढ़ई को कोई पद नहीं देते। तो बढ़ई को भी पागलपन शुरू होता है कि डाक्टर बनो। लेकिन बढ़ई की अपनी जरूरत है। उसकी जरूरत किसी डाक्टर से कम नहीं है और चमार की अपनी जरूरत है। उसकी जरूरत किसी प्राइममिनिस्टर से कम नहीं है। और शिक्षक की अपनी जरूरत है और किसी राष्ट्रपति से कम नहीं है। जिन्दगी बहुत लोगों का एक सम्मिलित चित्र है। जिन्दगी सम्यक संगीत है।

लिंकन जब प्रेसिडेन्ट हुआ अमरीका का, यह तो आपको पता होगा कि उसका बाप एक चमार था। जूते सीता था। लिंकन प्रेसिडेन्ट हो गया तो कई लोगों को बहुत अखरा कि चमार का लड़का प्रेसिडेन्ट हो गया। पहले दिन जब सीनेट में लिंकन बोलने खड़ा हुआ तो एक आदमी ने खड़े होकर यह याद दिला देना जरूरी समझा कि इस बात को कोई भूल न जाये कि वे चमार के बेटे हैं। एक आदमी ने खड़ा होकर कहा कि महाशय लिंकन, यह मत भूल जाना कि आप एक चमार के लड़के हैं। तालियां बज गई होंगी संसद में, लोग बहुत खुश हुए होंगे कि ठीक वक्त पर याद दिला दिया। लिंकन से खड़े होकर कहा, मेरे पिता की याद दिला कर तुमने बहुत अच्छा किया। मैं बड़ी खुशी से भर गया हूं क्यों मैं यह कहता हूं कि मेरे पिता की याद दिलाकर तुमने बहुत अच्छा किया क्योंकि में यह भी तुम्हें कह देना चाहता हूं कि मेरे पिता जितने अच्छे चमार थे उतना अच्छा राष्ट्रपति मैं नहीं हो सकूंगा। और जिन सज्जन ने यह कहा था, लिंकन ने उनसे कहा कि महाशय, जहांतक मुझे याद आता है आपके पिता भी मेरे पिता से ही जूते बनवाते थे और जहांतक मेरा ख्याल है, आपके पिता ने कभी भी शिकायत नहीं की है, लेकिन आपको कैसे याद आ गई बात। मेरे पिता के जूतों से कोई शिकायत है आपको? मेरे पिता के चमार होने से कोई शिकायत है आपको? यह याद दिलाने का ख्याल आपको कैसे आ गया? मैं धन्यभागी हूं कि मेरे पिता एक अद्भुत चमार थे। वे कुशल कारीगर थे।

यह दृष्टि जो है जीवन को देनी जरूरी है। महत्वाकांक्षा की दृष्टि ने पद पैदा कर दिये। जीवन में पद पैदा कर दिये हैं। कौन ऊंचा कौन नीचा, यह महत्वाकांक्षा की शिक्षा का परिणाम (By-product) है, कि फला आदमी चूंकि ज्यादा शिक्षा लेता है इसलिए ज्यादा ऊंचा है, कम शिक्षा लेता

है इसलिए कम ऊंचा है। जो अनस्किल्ड हैं वह बिल्कुल किसी स्थान पर ही नहीं है। जीवन बहुत चीजों का जोड़ है। जीवन बहुत चीजों का संगीत है। एक ऐसी दुनियां बनानी है जहां सब जरूरी है, सब महत्वपूर्ण है, सब गौरवान्वित हैं। इस दुनिया को मिटा देना है, जहां थोड़े से लोगों के गौरव के लिए सारे लोगों का गौरव छीन लिया जाता है। यह वैसी दुनियां है जैसे कोई गांव हो और उस गांव में लोग यह तय कर लें कि दस पांच आदमियों की आंखें बचा लो। बाकी सबकी आंखें फोड़ दो। क्योंकि बाकी अन्धे लोगों के बीच में आंख वाला होना बड़ा आनन्दपूर्ण होगा। सब अन्धे होंगे। हमारे पास आंखें होंगी तो बड़ा अच्छा होगा। तो उस गांव में अगर कुछ लोग ऐसा कर लें। दस लोग मिलकर, और दस लोग मिलकर कुछ भी कर सकते हैं। क्योंकि दस लोग जहां मिल जाते हैं वहीं राजनीति शुरू हो जाती है। दस गुण्डे मिलकर कुछ भी कर सकते हैं और यही आजतक दुनिया का दुर्भाग्य रहा है। अच्छे आदमी कभी मिलते नहीं, बुरे आदमी बहुत जल्दी मिल जाते हैं। दस आदमी मिलकर यह तय कर लें कि नगर के सारे लोगों की आंखें फोड़ दो ताकि कुछ लोगों को आंख वाले होने का बड़ा आनन्द उपलब्ध हो। जरूर तुमको आनन्द ज्यादा उपलब्ध होगा। क्योंकि अंधों की बस्ती में आंख वाला होना बड़ा आनन्दपूर्ण, बड़े अहंकार की तृष्ति करता है। कुछ लोगों ने यही किया हुआ है कि कुछ लोगों को पद दे दो। सारे लोगों के पद की सारी व्यवस्थाएं छीन लो ताकि पद का होना बहुत आनन्दपूर्ण हो जाएगा। इन दुष्टों ने, इन हिंसक लोगों ने एक पृथ्वी बना दी है जो नर्क हो गई है। अगर तोड़ना है तो इस सबको तोड़ देना जरूरी है। और एक समाज, एक जीवन, एक संस्कृति निर्मित करनी है जहां हर आदमी को गौरवान्वित होने का मौका हो। जहां हर आदमी को स्वयं होने का मौका और अवसर हो। जहां पर आदमी जो भी होना चाहिये सम्मानित और गौरव से हो सके। जहां गुलांब के फूल भी आदरित हों और घास के फूल भी सम्मानित हों। क्योंकि घास और गुलाब के फूल में परमात्मा का कोई फासला कोई भेद नहीं।

जब आकाश में सूरज निकलता है तो सूरज गुलाब के फूल देखकर यह नहीं कहता है कि मैं तुझे ज्यादा रोशनी दूंगा। घास के फूल से यह नहीं कहता कि घास के फूल, हट, बीच में शुद्र तू कहां यहां आ गया, तुझे रोशनी नहीं दी जा सकती। उस घास के फूल को भी सूरज उतनी ही रोशनी देता है जितनी गुलाब के फूल को। जब आकाश में बादल घिरते हैं। तो गुलाब के फूल पर

ही पानी नहीं गिरता है। घास के फूल पर भी पानी गिरता है। और घास के फूल पर गिरा हुआ पानी दुख अनुभव नहीं करता है कि कहां मेरा दुर्भाग्य कि घास के फूल पर गिर रहा हूं और घास का फूल जब खिलता है छोटा सा फूल और जब हवाओं में घास का फूल नाचता है तो उसकी खुशी किसी गुलाब के फूल से कम नहीं होती। असल में सवाल घास के फूल का और गुलाब के फूल का नहीं है। सवाल पूरी तरह खिल जाने का है। चाहे गुलाब का फूल पूरी तरह खिल जाये, चाहे घास का फूल पूरी तरह खिल जाये। जो पूरी तरह खिल जाता है वह आनन्द को उपलब्ध हो जाता है, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।

अहंकार

(एक वार्ता)

संकलन : नरेन्द्र स्वामी

एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे से गांव में एक बड़ी अद्भुत घटना घट गयी थी। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली थी और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गये थे और शराबगृह से बाहर निकले थे तो चांद की बरसती हुई चांदनी में यह ख्याल आ गया कि नदी पर जांए और नौका विहार करें। रात बड़ी सुन्दर थी और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुंच गये। नाव वहां बंधी थी। मछुवे नाव बांधकर घर जा चुके थे। रात आधी हो गयी थी। वे एक नाव में सवार हो गये। उन्होंने पतवार उठा ली और नाव खेना शुरू कर दिया। फिर वे रात देर तक नाव खेते रहे। सुबह होने के करीब आ गयी। सुबह की ठण्डी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। उनका नशा कुछ कम हुआ और उन्होंने सोचा कि हम न मालूम कितनी दूर निकल आये हैं। आधी रात से हम नाव चला रहे हैं, न मालूम किनारे और गांव से कितने दूर आ गये हैं। उनमें एक ने सोचा कि उचित है कि मैं नीचे उतरकर देख लूं कि हम किस दिशा में आ गये हैं। क्योंकि नशे में जो चलते हैं उन्हें दिशा का कोई भी पता नहीं होता है कि हम कहां पहुंच गये हैं और किस जगह हैं। जबतक हम इसे न समझते तबतक हम वापस भी कैसे लौटेंगे और फिर सुबह होने के करीब है, गांव के लोग चिन्तित हो जायेंगे। एक युवक नीचे उतरा और नीचे उतरकर जोर से हंसने लगा। दूसरे युवक ने पूछा, हंसते क्यों हो? बात क्या है? उसने कहा, तुम भी नीचे उतर आओ और तुम भी हंसो।

वे सारे लोग नीचे उतरे हंसने लगे। आप पूछेंगे। बात क्या थी? अगर आप भी उस नाव में होते और नीचे उतरते तो आप भी हंसते। बात ही कुछ ऐसी थी। वे वहीं के वहीं खड़े थे, नाव कहीं भी नहीं गयी थी। असल में वे नाव की जंजीर खोलना भूल गये थे। नाव की जंजीर किनारे से बंधी थी। उन्होंने बहुत पतवार चलायी और बहुत श्रम किया लेकिन सारा श्रम व्यर्थ हो गया था क्योंकि किनारे से बंधी हुई नावें कोई यात्रा नहीं करतीं।

मनुष्य की आत्मा की नाव भी किसी खूंटी से बंधी है। और इसीलिए उनकी आत्मा की नाव कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच जाती है। वे वहीं खड़े रह जाते हैं जहां से यात्रा शुरू होती है। श्रम वे बहुत करते हैं, पतबार वे बहुत चलाते हैं। समय वे बहुत लगाते हैं लेकिन नाव कहीं पहुंचती नहीं है। और आदमी उस खूंटी से बंधा हुआ एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगता है। एक ही जगह पट घूमता है। घूमते घूमते नष्ट और समाप्त हो जाता है। सारा जीवन इन्हीं चक्करों में व्यर्थ चला जाता है।

एक गांव मे मैं गया था। एक बैल कोल्हू चलाने का जीवन भर काम करता रहा। फिर वह बूढ़ा हो गया और बैल के मालिक ने उसे काम के योग्य न समझ कर छोड़ दिया। खुला ही घूमता रहता था। लेकिन मै बड़ा हैरान हुआ। वह गोल चक्करों मैं ही घूमता था खेत में उसे छोड़ देते तो वह गोल चक्कर लगाता था। जीवन भर की उसकी आदत थी। आज कोई बीच में खूंटी भी नहीं थी। आज किसी कोल्हू में भी वह नहीं जुता था। लेकिन जीवन भर गोल चक्करों में जो घूमा है वह फिर भी गोल चक्करों में घूमने की आदत के कारण गोल गोल ही घूमता था। गांव के लोगों ने उस बैल को समझाने की बहुत कोशिश की कि इस तरह मत घूमो, लेकिन बैल कहीं किसी की सुनते हैं? बैल तो दूर, आदमी ही नहीं सुनते तो बैल कैसे सुनेंगे। उस गांव के लोग कैसे नासमझ थे, उस बैल को समझाते थे कि सीधे चलो, गोल गोल घूमने की कोई भी जरूरत नहीं है क्योंकि जो गोल गोल घूमता है वह कहीं भी नहीं पहुंचता है। जिसे पहुंचना हो, उसे सीधे जाना होता है, गोल नहीं घूमना होता है। मुझे हंसी आयी थी उन गांव के लोगों पर। मैं भी उस गांव के लोगों को समझाने गया था। गांव के एक बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम हम पर हंसते हो कि हम बैलों को समझाते हैं, हम तुम पर हंसते हैं कि तुम आदमी को समझाते हो। न बैल सुनते है न आदमी सुनता है और बैल तो सुन भी सकते हैं कभी क्योंकि बैल

सीधे और सरल हैं। आदमी तो बहुत तिरछा है, वह नहीं सुन सकता है। लेकिन फिर भी चाहे यह गलती ही सही नासमझी ही सही, आदमी को समझाना ही पड़ेगा, वह सुने या सुने उसे कहना ही पड़ेगा। क्या कहना है उसे? उस खूंटी के बाबत उसे कहना है जिससे बंधा हुआ वह एक कोल्हू का बैल बना जाता है, एक अमृतमयी आत्मा नहीं। वह एक बंधा हुआ पशु बन जाता है। शायद आपको पता न हो कि पशु शब्द का अर्थ क्या होता है पशु शब्द का अर्थ होता है जो पास में बंधा हो। बंधे हुए होने को ही पशु कहते हैं। जो बंधा है और गोल गोल घूमता है वही पशु है। पशु का अर्थ है जो पास में बंधा है, किसी जंजीर में बंधा है, किसी कील से ठुका है। जो बंधा है वही पशु है। हम सारे लोग ही बंधे हैं। हमारे भीतर मनुष्य का भी जन्म नहीं हो पाता, परमात्मा तो बहुत दूर की मंजिल है। आदमी भी होना बहुत कठिन है।

डायोजिनीज का नाम सुना होगा, जरूर सुना होगा। और यह भी हो सकता है कि वह कहीं न कहीं आपको मिल गया हो। सुनते हैं दो हजार साल पहले वह पैदा हुआ था और दिन की भरी रोशनी में जलती हुई लालटेन लेकर गांवों में घूमा करता था और हर आदमी के चेहरे के पास लालटेन ले जाकर देखता था। लोग चौंक जाते थे कि क्या बात है! क्या देखना चाहता है! और दिन की रोशनी में जबकि सूरज आकाश में हो, लालटेन इसलिए लिए हुए है? दिमाग खराब हो गया है? कहता, "दिमाग मेरा खराब नहीं हुआ है। मैं आदमी की तलाश में हूं। मैं हर आदमी के चेहरे को रोशनी में देखने की कोशिश करता हूं, आदमी है या नहीं? क्योंकि चेहरे बहुत धोखा देते हैं। चेहरों से ऐसा मालूम होता है कि सब आदमी हैं और भीतर आदमियत का कोई निवास नहीं होता।" आदमी भी होना कठिन है, परमात्मा तो दूरकी मंजिल है। लेकिन यह भी आपसे कहूं, जो आदमी हो जाता है उसके लिए परमात्मा की मंजिल भी बहुत निकट हो जाती है। कौन सी चीज है जो हमें बांधे है जिसके कारण हम पशु हो जाते हैं।

एक छोटी सी कहानी से शायद इशारा ख्याल में आ सके कि कौन सी चीज हमें बांधे हुए है, कौन सी चीज के इर्द गिर्द हम जीवन पर घूमते हैं और नष्ट होते हैं। कुछ ऐसी चीज है जिसके पीछे हम पागल की तरह चक्कर लगाते हैं और व्यर्थ हो जाते हैं।

एक जंगल के पास एक छोटा सा गांव था। और एक दिन सुबह एक सम्राट शिकार खेलते में भटक गया और उस गांव में आया। रात भर का थका

मांदा था और उसे भूख लगी थी। वह गांव के पहले ही झोपड़े पर रुका और उस झोपड़े के बूढ़े आदमी को कहा, "क्या मुझे दो अण्डे उपलब्ध हो सकते हैं? थोड़ी चाय मिल सकती है?" उस बूढ़े आदमी ने कहा, जरूर, स्वागत है आपका। आइये। वह सम्राट बैठ गया उस झोपड़े में। उसे चाय और दो अण्डे दिये गये। नाश्ता कर लेने के बाद उसने पूछा कि इन अण्डों के दाम कितने हुए। उस बूढ़े आदमी ने कहा, ज्यादा नहीं, केवल १०० रु.। सम्राट तो हैरान हो गया। उसने बहुत मंहगी चीजें खरीदी थी, लेकिन कभी सोचा भी नहीं था कि दो अण्डे के दाम भी १०० रु. हो सकते हैं। उस सम्राट ने उस बूढ़े आदमी को पूछा, क्या इतना कठिन है अण्डे का मिलना यहां? वह बूढ़ा आदमी बोला, नहीं। अण्डे तो बहुत मुश्किल नहीं हैं, बहुत होते हैं लेकिन राजा मिलना बहुत मुश्किल है। कभी कभी राजा मिलते हैं। उस सम्राट ने १०० रु. निकाल कर उस बूढ़े को दे दिये और अपने घोड़े पर सवार होकर चला गया। उस बूढ़े की औरत ने कहा, कैसा जादू किया तुमने कि दो अण्डे के सौ रुपये वसूल कर लिये। क्या तरकीब थी तुम्हारी? उस बूढ़े ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। जिसके आस-पास आदमी जीवन भर घूमता है वह खूंटी मुझे पता है। और खूंटी को छू दो और आदमी एकदम घूमना शुरू हो जाता है। मैंने वह खूंटी छू दी और राजा एकदम घूमने लगा। उसकी औरत ने कहा मैं समझी नहीं। कौन सी खूंटी? कैसा घूमना? उस बूढ़े ने कहा तुझे मैं एक और घटना बताता हूं अपनी जिन्दगी की। शायद उससे तुझे समझ में आ जाये।

जब में जवान था तो मैं एक राजधानी में गया। मैंने वहां एक सस्ती सी पगड़ी खरीदी जिसके दाम तीन चार रुपये थे। लेकिन पगड़ी बड़ी रंगीन और चमकदार थी। जैसी कि सस्ती चीजें हमेशा रंगीन और चमकदार होती हैं। जहां बहुत रंगीनी हो और बहुत चमक, समझ लेना भीतर सस्ती चीज होनी ही चाहिए। सस्ती थी लेकिन तब भी बहुत चमकदार थी बहुत रंगीन थी। मैं उस पगड़ी को पहनकर सम्राट के दरबार में पहुंच गया। सम्राट की आंख एकदम से उस पगड़ी पर पड़ी। क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कपड़े के अलावा कुछ और देखते हों। आदमी को कौन देखता है? आत्मा को कौन देखता है? पगड़ियां भर दिखाई पड़ती हैं। उस सम्राट की नजर एकदम पगड़ी पर आ गई और उसने कहा, कितने में खरीदी है? बड़ी सुन्दर, रंगीन है। मैंने उस सम्राट से कहा, पूछते हैं कितने में खरीदी है? पांच हजार रुपये खर्च किये हैं इस पगड़ी के लिए। सम्राट तो एकदम हैरान हो गया लेकिन इससे

पहले कि सम्राट कुछ कहता, वजीर ने उसके सिंहासन के पास झुक कर सम्राट के कान में कुछ कहा। उसने सम्राट के कान में कहा कि, सावधान! आदमी धोखेबाज मालूम होता है। दो चार पांच रुपये की पगड़ी के पांच हजार दाम बता रहा है। बेइमान है। लूटने के इरादे हैं। उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को कहा, मैं फौरन समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। जो लोग किसी को लूटते रहते हैं वे दूसरे लूटने वाले से बड़े सचेत हो जाते हैं। लेकिन मैं भी हारने को राजी नहीं था। मैं वापस लौटने लगा। मैंने उस सम्राट को कहा कि मैं जाऊं। क्योंकि मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी है उसने मुझे यह वचन दिया है कि इस पृथ्वी पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इस पगड़ी के पचास हजार भी दे सकता है। मैं उसी सम्राट की खोज में निकला हुआ हूं। तो मैं जाऊं? आप वह सम्राट नहीं है। यह राजधानी वह राजधानी नहीं है। यह दरबार वह दरबार नहीं है जहां यह पगड़ी बिक सकेगी। लेकिन कहीं बिकेगी, मैं जाता हूं। उस सम्राट ने कहा पगड़ी रखो। पचास हजार रुपये ले लो। वजीर बहुत हैरान हो गया। जब मैं पचास हजार रुपये लेकर लौटने लगा दरवाजे पर वजीर मुझे मिला और कहा हद कर दी। हम भी बहुत कुशल हैं लूटने में लेकिन यह तो जादू हो गया। मामला क्या है। तो मैंने वजीर के कान में कहा कि तुम्हें पता होगा कि पगड़ियों के दाम कितने होते हैं, मुझे आदमियों की कमजोरियों का पता है। मुझे उस खूंटी का पता है जिसको छू दो और आदमी एकदम घूमने लगता है।

पता नहीं वह बूढ़ी समझ पाई अपने पति की यह बात या नहीं। लेकिन आप समझ गये होंगे। आप पहचान गये होंगे। आदमी किस खूंटी से बंधा है? अहंकार के अतिरिक्त आदमी के जीवन में और कोई खूंटी नहीं है। और जो अहंकार से बंधा है वह और हजार तरह से बंध जाएगा। और जो अहंकार से मुक्त हो जाता है वह और सब भांति भी मुक्त हो जाता है। एक ही स्वतंत्रता है जीवन में, एक ही मुक्ति है, एक ही मोक्ष है और एक ही द्वार है प्रभु का और वह है अहंकार की खूंटी से मुक्त हो जाना। एक ही धर्म है, एक ही प्रार्थना, है, एक ही पूजा है और वह है अहंकार से मुक्त हो जाना। एक ही मंदिर है, एक ही मस्जिद है, एक ही शिवाला है। जिस हृदय में अहंकार नहीं वहीं मंदिर है, वहीं मस्जिद है, वहीं शिवाला है।

जीवन को देखने को दो ही दृष्टियां हैं और जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं। या तो अहंकार के इर्दगिर्द जियो या निरअंहकार के। जो अहंकार से बंधा

है वह पृथ्वी से बंधा रह जाता है । और निरअंहकार में जो उठते हैं आकाश उनका हो जाता है । आकाश की स्वतंत्रता उनकी हो जाती है। जीवन में विराट तक पहुंचने का मार्ग खुल जाता है । क्यों ? क्योंकि जो छुद्र से मुक्त होता है वह विराट से संयुक्त हो जाता है। यह तो गणित की तरह सीधा सा नियम है। यह तो एक सार्वभौम (Universal) नियम है। जो छुद्र से बंधा है वह विराट से बंचित हो जाएगा। और जो छुद्र से मुक्त हो जाता है वह विराट में प्रविष्ट हो जाता है।

एक पानी की बूंद थी। वह समुद्र होना चाहती थी। वह बूंद मुझसे पूछने लगी, मैं समुद्र कैसे हो जाऊंगी ? मैंने उस बूंद को कहा, बड़ी छोटी और एक ही तरकीब है । बूंद अगर बूंद होने से राजी है। अगर बूंद, बूंद ही बनी रहने में सुखी है तो समुद्र से मिलने का कोई रास्ता नहीं है। लेकिन अगर तू बूंद की भांति मिटने को राजी हो जा तो मिटते ही सागर हो जायेगी। उस बूंद ने मेरी बात मान ली। वह सागर में कूद गई। उसने खो दिया अपने को। उसने अपने अहंकार को धो डाला। वह सागर से एक हो गई लेकिन उसने कुछ खोया नहीं। उस बूंद ने खोई बूंद और हो गई सागर। इसे कोई खोना कहेगा ? इसे कोई मिटना कहेगा ? अगर यही मिटना है तो फिर पाना और क्या हो सकता है।

हम अहंकार की खूंटी में बंधे हुए हैं और परमात्मा के सागर को खोजने निकल पड़े हैं। हम अहंकार की छोटी छुद्र बिन्दु बने हुए हैं और विराट के, असीम के साथ एक होने की कामना ने हमें पीड़ित कर रखा है। हम भी इनके किनारे से बंधे हुए हैं और सागर की यात्रा, अज्ञात सागर की यात्रा को हमने स्वीकार कर लिया है। इन्हीं दोनों के बीच खिच खिच कर आदमी नष्ट हो जाता है। वह अहंकार को भी बचा लेना चाहता है और प्रभु को भी पा लेना चाहता है। कबीर कहते थे उसकी गली बहुत संकरी है। वहां दो नहीं समा सकेंगे। या तो वही हो सकता है या फिर हम हो सकते हैं। हमारा सारा जीवन अहंकार की परिपुष्ट करने में व्यतीत होता है, विसर्जित करने में नहीं। हम उसे मजबूत करते हैं जो हमारी पीड़ा है। हम उसी घाव को गहरा करते हैं जो हमारा दुख है। हम उसी बीमारी को पानी सींचते हैं जो प्राण लिये लेती है। अहंकार को सींचने के सिवाय हम जीवन भर और क्या करते हैं ? किसलिए उठाते है यह मकान, आकाश को छू लेने वाले ? आदमी के रहने के लिए ? झूठी है यह बात। अहंकार का निवास बनाने के लिए। आदमी के रहने के लिए छोटे झोपड़े भी काफी हैं लेकिन अहंकार के लिए बड़े

से बड़े मकान भी छोटे हैं। अहंकार उठाता है बड़े मकानों को कि आकाश छू लें। किसलिए विजय यात्राएं पलती हैं? किस लिए सिकन्दर नेपोलियन और चंगेज पैदा होते हैं? जीने से चंगेज का, सिकन्दर का, नेपोलियन का क्या वास्ता है? लेकिन नहीं अहंकार की यात्राएं बड़ी दूर ले जाती हैं आदमी को। सिकन्दर जिस दिन मरने को था बहुत उदास था। किसी ने पूछा कि तुम इतने उदास क्यों हो? सिकन्दर ने कहा कि मैं इसलिए उदास हूं कि सारी दुनियां को मैंने करीब करीब जीत लिया। अब बड़ी कठिनाई में मैं पड़ गया हूं। दूसरी कोई दुनिया ही नहीं है जिसको मैं आगे जीतूं और अब मेरे भीतर बड़ा खालीपन मालूम होता है। क्योंकि जबतक मैं जीतता न रहूं तबतक मुझे कोई चैन नहीं और दुनिया समाप्त होने के करीब आ गई है। दूसरी कोई दुनिया नहीं है। मैं क्या जीतूं। अहंकार दुनियां को जीत ले तो फिर दूसरी दुनिया को जीतने की आकांक्षा शुरू हो जाती है।

अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति कारनेगी मरण शैया पर पड़ा था। एक मित्र ने उससे पूछा कितनी सम्पत्ति तुमने जीवन में इकट्ठी की है? उसने कहा ज्यादा नहीं, केवल दस अरब। मित्र ने कहा—दस अरब! कहते हो ज्यादा नहीं! कारनेगी ने कहा मेरे इरादे सौ अरब इकट्ठा करने के थे, लेकिन बुढ़ाया निकट जा गया, योजना अधूरी रही जाती है। क्या आप सोचते हैं कि कारनेगी सौ अरब इकट्ठा कर लेता तो कोई फर्क पड़ जाता? जरा भी फर्क नहीं पड़ने वाला था। आदमी को हम भलीभांति जानते हैं। फर्क जरा भी नहीं पड़ सकता था। कारनेगी के पास सौ अरब इकट्ठे हो जाते तो कारनेगी के इरादे हजार अरब पर पहुंच जाते। आदमी का इरादा उसके आगे चलता है। आदमी की वासना उसकी आगे चलती है। आदमी हमेशा पीछे रह जाता है। मंजिल जिसको वह छूना चाहता है और आगे हट जाती है। अहंकार छोड़ता है और दौड़ता है, कहीं भी पहुंचता नहीं है।

एक छोटी सी बच्चों की कथा है। अलाइस नाम की एक लड़की स्वर्ग में पहुंच गई, परियों के देश में। पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुंचते पहुंचते बहुत थक गई थी। स्वर्ग तक पहुंचते ही, परियों के देश में पहुंचते ही उसे दिखाई पड़ा कि दूर एक आम की घनी छाया के नीचे एक परियों की रानी खड़ी है और उसके पास फलों के और मिठाइयों के थाल सजे हैं और वह रानी उस भूखी अलाइस को बुला रही है कि आ जाओ। वह दिखाई पड़ रही है। उसकी आवाज सुनाई पड़ती है कि अलाइस आ जा। अलाइस दौड़ना शुरू कर देती है। सुबह है। सूरज निकल

रहा है। फिर दोपहर हो जाती है। सूरज ऊपर आ गया है और अलाइस दौड़ी चली जा रही है। वह थकगई है। उसने खड़ी होकर चिल्लाकर पूछा कि कैसी दुनियां है तुम्हारी ! सुबह से मैं दौड़ रही हूं लेकिन मेरे तुम्हारे बीच का फासला पूरा नहीं होता ! तुम उतनी ही दूर मालूम पड़ती हो रानी ! रानी ने चिल्लाकर कहा, घबरा मत दौड़ती आ। जो दौड़ते हैं वे पहुंच जाते हैं। खड़ी होकर समय मत खो। थोड़ी देर में सूरज ढल जाएगा और सांझ आ जाएगी। दौड़, जल्दी आ। अलाइस और तेजी से दौड़ने लगी। सूरज जैसे जैसे नीचे उतरने लगा अलाइस और तेज दौड़ रही है, और तेज दौड़ रही है। लेकिन न मालूम कैसी पागल दुनिया है। रानी उतनी ही दूर, रानी और उसके बीच का फासला कम नहीं होता है। फिर वह थक्कर चकनाचूर होकर गिर पड़ती है और चिल्लाती है कि मामला क्या है? ये कैसे रास्ते हैं परियों के देश के कि में सुबह से दौड़ रही हूं। सूरज डूबने के करीब आ गया। मैं अबतक तुम्हारे पास पहुंच नहीं पाई। तुम उतनी ही दूर खड़ी हो जितनी सुबह थीं। वह रानी खूब हंसने लगी। उसने कहा, पागल ! परियों के देश में ही रास्ते ऐसे नहीं हैं, आदमियों के देश में भी रास्ते ऐसे ही हैं। लोग दौड़ते हैं, लेकिन पहुंचते कभी भी नहीं। फासला उतना ही बना रहता है।

जन्म के साथ आदमी जहां होता है मरने के साथ भी अपने को वहीं पाता है। कोई फासला पूरा नहीं होता, कोई यात्रा पूरी नहीं होती। जिस अहंकार को हम छोड़ने चले हैं वह एकदम झूठी इकाई (False entity) है। वह होती तो भर भी जाती। वह होती तो हम उसे पूरा भी कर लेते। वह होती तो हम उसकी पूर्ति का कोई न कोई रास्ता खोज लेते। लेकिन अहंकार है झूठी इकाई। आदमी के भीतर अहंकार से ज्यादा बड़ा असत्य नहीं है। वह है नहीं। 'मैं' जैसी कोई भी चीज शब्दों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है। और जिस दिन थोड़े शब्दों को छोड़कर भीतर झांकेगें तो वहां किसी 'मैं' को नहीं पायेगें। कभी किसी ने नहीं पाया है।

'मैं' एक शब्द मात्र है, 'मैं' एक संज्ञा मात्र है, एक काम चलाऊ शब्द है। हमारे सभी शब्द काम चलाऊ हैं। एक आदमी का नाम हम रख लेते हैं। दूसरें लोगों के पुकाराने के लिए नाम रख लेते हैं ताकि दूसरे लोग पुकारें तो पता चले कि किसको पुकार रहे हैं। दूसरे को पुकारने के लिए होता है नाम और खुद को पुकारने के लिए होती है 'मैं' की इकाई, अन्यथा हम क्या पुकारें अपने आपको? कहते हैं 'मैं'। यह शब्द काम दे देता है जीवन में। लेकिन यह शब्द बड़ा झूठा

है। इसके पीछे कोई भी सत्य नहीं है, यह बिलकुल छाया है। इसके पीछे कोई भी वस्तु नहीं। कोई भी पदार्थ नहीं। यह बिल्कुल झूठी छाया है और इस छाया को हम घेरने में, दौड़ने में लगे रहते हैं, छाया को ही पकड़ने में लगे रहते हैं।

एक सन्यासी घर के सामने से निकल रहा था। एक छोटा सा बच्चा घुटने टेक के चलता था। सुबह थी और धूप निकली थी और उस बच्चे की छाया आगे पड़ गई थी। वह बच्चा छाया में अपने सिर को पकड़ने के लिए हाथ ले जाता है, लेकिन जबतक उसका हाथ पहुंचता है छाया आगे बढ़ जाती है। बच्चा थक गया और रोने लगा। उसकी मां उसे समझाने लगी कि पागल यह छाया है। छाया पकड़ी नहीं जाती, लेकिन बच्चे समझ सकते हैं कि क्या छाया है और क्या सत्य है? जो समझ लेता है कि क्या छाया है और क्या सत्य, वह बच्चा नहीं रह जाता। वह प्रौढ़ होता है। बच्चे कभी नहीं समझते कि छाया क्या है, सपने क्या हैं, झूठ क्या है। वह बच्चा रोने लगा। कहा कि मुझे तो पकड़ना है इस छाया के सिर को। वह सन्यासी भीख मांगने आया था। उसने उसकी मां को कहा, मैं पकड़ा देता हूं। वहबच्चे के पास गया। उस रोते हुए बच्चे के आंखों से आंसू टपकते थे। सभी बच्चों के आंखों से आंसू टपकते हैं। जिन्दगी भर दौड़ते हैं और पकड़ नहीं पाते। पकड़ने की योजना ही झूठी है। बूढ़े भी रोते हैं और बच्चे भी रोते हैं। वह बच्चा भी रो रहा था तो कोई ना समझी तो नहीं कर रहा था। उस सन्यासी ने उसके पास जाकर कहा, बेटे रो मत। क्या करना है तुझे। छाया पकड़नी है? उस सन्यासी ने कहा, जीवन भर भी कोशिश करके थक जायेगा, परेशान हो जायेगा। छाया को पकड़ने का यह रास्ता नहीं है। उस सन्यासी ने उस बच्चे का हाथ पकड़ा और उसके सिर पर रख दिया। इधर हाथ सिर पर गया, उधर छाया के ऊपर भी सिर पर हाथ गया। सन्यासी ने कहा, देख पकड़ ली तू ने छाया। छाया कोई सीधा पकड़ेगा तो नहीं पकड़ सकेगा। लेकिन अपने को पकड़ लेगा तो छाया पकड़ में आ ही जाती है। जो अहंकार को पकड़ने के लिए दौड़ता है वह अहंकार को कभी नहीं पकड़ पाता। अहंकार मात्र छाया है। लेकिन जो आत्मा को पकड़ लेता है, अहंकार उसकी पकड़ में आ जाता है। वह तो छाया है। उसका कोई मूल्य नहीं। केवल वे ही लोग तृप्ति को, केवल वे ही लोग आप्त-कांता को उपलब्ध होते हैं जो आत्मा को उपलब्ध होते हैं। आत्मा और अहंकार के बीच चुनाव है। आत्मा और अहंकार के बीच सारा विकल्प है, आत्मा और अहंकार के बीच जीवन की सारी व्यथा, सारी पीड़ा है। जो अहंकार की तरफ

जात हैं वे भटक जाते हैं । वे गलत खूंटी के आसपास जीवन को घुमाते हैं। लेकिन जो अहंकार से पीछे हटते हैं और उसकी तरफ जाते हैं जो मूल है, जो भीतर है, जो मैं हूं वस्तुतः जो मेरी अत्यंतिक सत्ता है। जो उसकी तरफ जाते हैं वे उपलब्ध हो जाते हैं और उनके लिए छायाएं देखने को नहीं रह जातीं। दुनियां में दो ही तरह की यात्राएं हैं—अहंकार को भरने की यात्रा है और आत्मा को उपलब्ध करने की यात्रा है। लेकिन अहंकार से जो बंध जाते हैं वे आत्मा से बंचित रह जाते हैं।

यह अहंकार क्या हम छोड़ने की कोशिश करें? नहीं, अगर छोड़ने की कोशिश की तो अहंकार से कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। छाया न तो पकड़ी जा सकती है और न छोड़ी जा कती है। जो चीज छोड़ी जा सकती है वह पकड़ी भी जा सकती है। छाया न छोड़ी जा सकती है न पकड़ी जा सकती है। अहंकार न पकड़ा जा सकता है न छोड़ा जा सकता है। इसलिए पकड़ने वाले तो भूल में पड़ते ही होंगे। छोड़ने वाले और भी बड़ी भूल में पड़ जाते हैं। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। छाया बड़ी सूक्ष्म है, पकड़ में नहीं आती और छोड़ने में भी नहीं आती। जो लोग सोचते हैं कि अहंकार छोड़ देंगे वे और भी बड़ी भूल में पड़ जाते हैं। आज तक किसी ने अहंकार को छोड़ा नहीं है। क्योंकि अहंकार बरा भी नहीं जा सकता और छोड़ा भी नही जा सकता ।

तो हम क्या करें? अहंकार जाना जा सकता है, अहंकार पहचाना जा सकता है, अहंकार की प्रतिभिज्ञा (Recognition) हो सकती है, अहंकार का बोध हो सकता है अहंकार के प्रति जागरूक हो सकते हैं। और जो आदमी अहंकार के प्रति जागरुक हो जाता है उसका अहंकार विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की निद्रा में अहंकार है, मनुष्य के जागरण में नहीं। जैसे ही कोई जागकर देखने की कोशिश करता है, कहां है अहंकार वैसे ही अहंकार हटने लगता है।

एक गांव में एक घर था। उस घर में बड़ा अन्धेरा था और कोई हजार साल से अन्धेरा था। उस गांव के लोग उस घर में नहीं जाते थे। मैं उस गांव में गया। मैंने कहा, इस घर को ऐसा ही छोड़ क्यों रखा है? गांव वालों ने कहा, इस घर में हजारों साल से अंधेरा है। मैंने कहा, अंधेरे की कोई ताकत होती है। दिया जलाओ और भीतर पहुंच जाओ। उन्होंने कहा, दिया जलाने से क्या होगा। यह रात रात का अन्धेरा नहीं है, हजारों साल का अंधेरा है। हजारों साल तक दिये जलाओ तब कहीं खतम हो सकता है। गणित बिल्कुल

ठीक था। बिलकुल तर्कसंगत थी यह बात। मैं भी डरा। बात तो ठीक ही थी। हजारों साल से घिरा अंधकार कहीं एक दिन के दिये जलाने से दूर हो सकता है। फिर भी मैंने कहा, एक कोशिश तो करके देख ही लें। क्योंकि जिन्दगी में कई बार गणित काम नहीं करता और तर्क व्यर्थ हो जाता है। जिन्दगी बड़ी अनूठी है। वह तर्कों के पास से चली जाती है और गणित से दूर निकल जाती है। गणित में हमेशा दो और दो चार होते हैं, जिन्दगी में कभी पांच भी हो जाते हैं और तीन भी हो जाते हैं। जिन्दगी गणित नहीं है। तो चलें देख लें। वे लोग राजी नहीं हुए और कहा कि जाने से फायदा क्या है? हमें नहीं पसन्द है यह बात। हमारे बाप दादे भी यही कहते थे। उन्होंने कहा दिये मत जलाना। हजारों साल का अन्धेरा है। उनके बाप दादों ने भी यही कहा था और आप तो बड़े परम्परा के विरोधी मालूम होते हैं। आप शास्त्रों को नहीं मानते। बुजुर्गों को नहीं मानते। हम नासमझ थे? हमारे गांव में तो लिखा हुआ रखा है कि इस घर में दिया मत जलाना। यह हजारों साल का पुराना अंधेरा है, मिट नहीं सकता। फिर भी मैंने उन्हें बामुश्किल राजी किया कि चलो देख तो लें। बहुत तो बहुत यही होगा कि हम असफल होंगे। मुश्किल से वे जाने को राजी हुए। दिया जलते ही वहां तो कोई भी अंधेरा नहीं था। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा यह अंधेरा कहां गया! मैंने कह दिया तुम्हारे हाथ में है खोजें कि कहां है अंधेरा। और अगर किसी दिन मिल जाय तो मुझे खबर कर दें, मैं फिर तुम्हारे गांव में आ जाऊं। अभी तक उनकी कोई खबर नहीं आयी। खोज रहे होंगे वे लोग दिये लेकर अंधेरे को और कहीं दिये के सामने अंधेरा आता है? कहीं दिये में अंधरा मिलता है?

अहंकार अंधकार के समान है जो अपने भीतर दिये को लेकर जाता है वह उसे कहीं भी नहीं पाता, न तो उसे छोड़ना है न उससे मांगना है। एक दिया जलाना है और उसे देखना है उस दिये की रोशनी में ढूंढ़ना है कि वह कहां है। हमें भीतर जागकर देखना है कि कहां है अहंकार? और वह वहा नहीं पाया जाता है। और जहां अहंकार नहीं पया जाता है वहां जो मिल जाता है उसी को कोई परमात्मा कहता है, कोई आत्मा कहता है, कोई सत्य कहता है। उसी को कोई सौन्दर्य कहता है, उसी को कोई और नाम देता है। नामों के भेद होते हैं। अहंकार जहां नहीं है वहां वह मिल जाता है जो सबके प्राणों का प्राण है, जो प्यारे से प्यारा है। लेकिन हम अहंकार से बंधे हैं और उसी के साथ जीते और मरते हैं इसलिए आत्मा की तरफ आंख नहीं जा

पाती। इसे देखना जरूरी है, इसे छोड़ना जरूरी नहीं है। इससे भागना जरूरी नहीं है, इसे पहचानना जरूरी है।

अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। कैसे हम देखें इसे जो कि हमें घेरे हुए है और जो पकड़े हुए है? क्या है रास्ता? कोई घड़ी आधी घड़ी कि सी मंदिर में बैठ जाने से यह नहीं देखा जा सकता। मंदिर में बैठने वालों का अहंकार तो और भी मजबूत हो जाता है, क्योंकि उन्हें ख्याल होता है कि हम धार्मिक हैं। बाकी सारा जगत अधार्मिक है। क्योंकि हम मंदिर आते हैं और हमारा स्वर्ग बन जाता है और बाकी सब नर्क में खड़े हैं। क्या आपको पता है ईसाई मजहब के हिमायतियों की राय है कि जो लोग सन्त पुरुष हैं, जो धार्मिक पुरुष हैं वे लोग स्वर्ग के आनन्द उठायेंगे। जो पापी हैं वे नर्क में कष्ट भोगेगें और स्वर्ग में जो धार्मिक लोग जायेंगे उन्हें एक विशेष प्रकार के सुख की भी सुविधा रहेगी और वह यह है कि नर्क में जो पापी कष्ट भोग रहे हैं उनको देखने का मजा भी वे ले सकेंगे। वहां से वे देख संकेगे कि कितने पापी नर्क में पड़ गये हैं और कष्ट झेल रहे हैं। जिन लोगों ने यह ख्याल किया होगा पुष्पात्माओं ने, धार्मिकों ने, कि पापियों को नर्क में कड़ाहों में जलते हुए देखने का मजा भी हम लेंगे। वे कैसे लोग रहे होंगे इसे आप भलीभांति सोच सकते हैं। और यह कोई ईसाईयत का सवाल नहीं है। दुनिया के सारे तथाकथित धार्मिक लोगोंने अपने को स्वर्ग में ले जाने की और दूसरे को नर्क में डालने की पूरी योजना और व्यवस्था कर रखी है। क्योंकि वह यह कह सकते हैं भगवान को कि मैं रोज तुम्हारे नाम पर माला फेरता था और इस आदमी ने माला नहीं फेरी। इसको डालो कड़ाहे में। मैं रोज मंदिर आता था। एक दिन भी नहीं चूका। सर्दी पड़ती थी तब भी आता था, धूप पड़ती थी तब भी आता था। यह आदमी कभी मंदिर में नहीं दिखाई पड़ा। डालो इसको कड़ाहे में। मैं गीता पढ़ता था, कुरान पढ़ता था, बाइबिल पढ़ता था। रोज तुम्हारे भजन कीर्तन करता था। क्या वे सब व्यर्थ गये? मुझे बैठाओ स्वर्ग में। लेकिन मुझे मजा इतने में नहीं आयेगा। कि मैं स्वर्ग में बैठ जाऊं। उन सब लोगों को जो मेरे पड़ोस में रहते थे बिना नर्क में डाले कोई आनन्द उपलब्ध नहीं हो सकता। उन सबको डालो नर्क में।

जर्मन कवि था हेम्। हेम ने एक कविता लिखी है। उस कविता में लिखा है कि एक रात भगवान ने मुझसे पूछा कि तुम चाहते क्या हो? जिससे तुमखुश हो जाओ। तो मैंने कहा मैं बहुत बड़ा मकान चाहता हूं। जैसा गांव में दूसरा मकान न हो। भगवान ने कहा ठीक है यह हो जाएगा। और क्या चाहते हो? एक

बहुत शानदार बगीचा चाहता हूं जैसा पृथ्वी पर न हो। भगवान ने कहा ठीक, यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है ? मैं जो भी जिस क्षण चाहूं उसी वक्त मुझे मिल जाय। भगवान ने कहा यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है ? हेम ने कहा अगर आप मानते ही नहीं और मेरे दिल की मुराद पूरी ही करना चाहते हैं तो एक काम और कर दें। मेरे बगीचे के दरख्त जो हों, मेरे पड़ोसी उन दरख्तों से लटके रहें तो मुझे पूरा आनन्द उपलब्ध हो जागा। अगर मानते ही नहीं हैं तो और मेरे दिल की आखिरी ख्वाहिस पूरी करना चाहते हैं तो इतना और कर दें कि मेरे सारे पड़ोसी दरख्तों से गर्दनों से लटके रहें। नींद खुल गई हेम की और उसने बाद में लिखा कि वह बहुत घबराया कि मेरे भीतर भी कैसी कैसी कामनाएं हैं। लेकिन अगर आप धार्मिक आदमियों के मन में खोजेंगे तो सबके मन में यह कामना है कि पड़ोसी नर्क में चले जायें और हम स्वर्ग में चले जायें। उस स्वर्ग में जाने के लिए सारा आयोजन करते हैं। मंदिर में बैठने वाले अहंकार से मुक्त नहीं होते। स्वर्ग में जाने की कामना रखने वाले अहंकारी ही हैं। मुझे परमात्मा मिल जाये। मैं परमात्मा को भी अपने अधिकारमें कर लूं। वह मेरी सम्पत्ति बन जाय, यह भी अहंकार की दौड़ है।

फिर क्या करें ? चौबीस घण्टे जागरुक होना पड़ता है और देखना पड़ता है कि जीवन की किन किन क्रियाओं में अहंकार खड़ा होता है। क्या वस्त्रों के पहनने से खड़ा होता है ? आंख के देखने के ढंग में खड़ा होता है ? पैर के उठने में खड़ा होता है, खोलने में खड़ा रहता है कि चुप रहजाने में खड़ा रहता है ? कहां कहां अहंकार खड़ा होता है। किन किन जगहों से सिर उठाता है। चौबीस घण्टे एक होश (Awareness) चाहिए कि कहां खड़ा हो रहा है। चोबीस घण्टे खोजबीन चाहिए दिया लेकर कि अहंकार कहां खड़ा होता है ? कैसे खड़ा होता है ? क्या है उसकी कोशिश ? उसके खड़े होने की प्रक्रिया क्या है ? कैसे निर्मित होता है भीतर ? कैसे संगठित होता है ? क्या मार्ग है उसके बन जाने का ? और अगर चोबीस घण्टे कोई देखता रहे, देखता रहे, खोजता रहे खोजता रहे तो बहुत हैरानी, बहुत आश्चर्य, बहुत चमत्कार अनुभव करेगा। जिन जिन जगहों पर यह खोज लेंगे कि यहां अहंकार खड़ा होता है वहीं वहीं से अहंकार बिदा हो जाएगा। और जिस दिन जीवन के सभी पहलू में और चित्त के सभी हिस्सों में अहंकार की खोज पूरी हो जाएगी और मन का कोई अनजान अपरिचित कोना बाकी नहीं रहेगा। उसी दिन आप अहंकार के बाहर हो जाते हैं।

एक सम्राट था। एक फकीर ने उस सम्राट को कहा, तू अगर चाहता है कि परमात्मा को पा लें तो एक ही रास्ता है। मेरे झोपड़े पर आजा और कुछ दिन मेरे पास रह जा। उस सम्राट की बड़ी तीव्र प्यास और आकांक्षा थी। वह उस फकीर के झोपड़े पर चला गया। उस फकीर ने कहा, कल सुबह तेरी शिक्षा शुरू होगी और शिक्षा बड़ी अजीब है। शिक्षा यह है कि कल सुबह तू कुछ भी कर रहा होगा और मैं लकड़ी की तलवार लेकर तेरे पीछे से हमला कर दूंगा। तू खाना खा रहा होगा। तू झोपड़े में बुहारी लगा रहा होगा, तू कपड़े धो रहा होगा, तू स्नान करता होगा और मैं तेरे ऊपर तलवार से हमला कर दूंगा। लकड़ी की तलवार होगी। हमेशा सावधान रहना कि मैं कब हमला करता हूं। क्योंकि मेरा कोई ठिकाना नहीं। मैं कोई खोज खबर नहीं दूंगा। पहले से रेडियो में कोई खबर नहीं निकालूंगा। अखबार में स्थानीय कार्यक्रम में खबर नहीं होगी कि आज मैं यह करने वाला हूं। यह कोई खबर नहीं होगी। कोई भाषा में कोई सिलसिला नहीं होगा। किसी भी क्षण में हमला कर दूंगा। तैयार रहना। उस सम्राट ने कहा, लेकिन इससे मतलब क्या है? वह फकीर बोला अहंकार इसी भांति चोबीस घंटे न मालूम कहां कहां से हमले कर दे। तो मैं हमला करूंगा। मेरी तलवार का ख्याल रखना। सात दिन में सम्राट की हड्डी पसलियां टूट गई। क्योंकि चौबीस घंटे वह बूढ़ा फकीर हर कभी हमला करने लगा। लेकिन सात दिन में सम्राट के यह भी ख्याल में आ गया कि सावधानी (Nationality) जैसी भी कोई चीज थी। पहली दफा जिन्दगी में उसे पता चला कि मैं अभी तक सोया सोया जीता रहा। अभी तक मैं होश से नहीं जीया। कभी मैंने होश का ख्याल ही नहीं किया, लेकिन सात दिन बराबर चुनौती मिली। चोट पड़ी और भीतर कोई चीज जागने लगी और ख्याल रखने लगी कि हमला होने को है। पन्द्रह दिन पूरे हो गये थे; हमले की खबर उसे मिलने लगी। गुरू के पैर की धीमी सी आहट भी उसे सुनाई पड़ जाती थी। वह अपनी ढाल संभाल लेता और हमले से बच जाता। तीन महीने पूरे हो गये। हमला करना मुश्किल हो गया। किसी भी हालत में हमला किया जाये, वह हमेशा सावधान होता और रोक लेता। उसके गुरु ने कहा एक पाठ तेरा पूरा हो गया। कल से दूसरा पाठ शुरू होगा और उसने पूछा कि इन तीन महिनों में तुझे क्या हुआ। तो सम्राट ने कहा दो बातें हुई। मैं हैरान हो गया। पहले तो मैं डर गया था कि इस लकड़ी की तलवार से चोट पहुंचाने का और परमात्मा से मिलने का क्या रास्ता है, क्या सम्बन्ध है! यह पागल तो नहीं है फकीर। मैं किसी पागल

के चक्कर में तो नहीं पड़ गया हूं ? लेकिन तीन महीने में मुझे पता चला कि जितना में सावधान रहने लगा उतना ही मैं निरहंकारी हो गया। जितना मैं सावधान रहने लगा उतना ही निर्विचार हो गया। जितना ही मैं होश से जीने लगा उतना ही मन के विचारों की धारा क्षीण हो गई। क्योंकि मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता। या तो विचार कर सकता है या जागरुक हो सकता है। दो चीजें एक साथ नहीं हो सकतीं। इसको थोड़ा देखना। जब विचार होंगे, सावधानी क्षीण हो जाएगी। जब सावधानी होगी, विचार क्षीण हो जाएगें। अगर मैं एक छुरी लेकर आपकी छाती पर आ जाऊं तो विचार एकदम बन्द हो जाते हैं। क्योंकि खतरे में चित्त पूरी तरह सावधान हो जाएगा कि पता नहीं क्या होगा। इस समय विचार करने की सुविधा नहीं है इस समय तो होश बनाये रखने की जरूरत है कि पता नहीं क्या होगा। एक क्षण में कुछ भी हो सकता है तो आप जाग जायेंगे। तीन महीने में उस सम्राट ने कहा कि मैं एकदम जागा हुआ हो गया हूं। विचार शांत हो गये, अहंकार का कोई पता नहीं चलता। दूसरा पाठ क्या है ?

उस वृद्ध फकीर ने कहा – कल से रात में भी हमला शुरू होगा। कल तू रात में सोया रहेगा तब भी दो चार दफा सामने आऊंगा। अब रात को भी सावधान रहना। उस सम्राट ने कहा, जागने तक भी गनीमत थी। अब यह बात जरा ज्यादा हो जाती है। नींद में मैं क्या करूंगा ? मेरा क्या बस है नींद में। वृद्ध ने कहा, नींद में भी बस है, तुझे पता नहीं। नींद में भी तेरे भीतर कोई जागा हुआ है और होश में है। चादर सरक जाती है और किसी को नींद में पता चल जाता है कि चादर सरक गयी है। एक छोटा सा मच्छर काटने लगता और नींद में कोई जान जाता है कि मच्छर आ गया है। एक मां रात में सोचती है कि मेरा बच्चा बीमार है। आकाश में बादल गरजते रहे उसे कोई खबर नहीं मिलती लेकिन बच्चा बीमार है, वह जरा सी आवाज करता है और मां जाग जाती है और हाथ फेरने लगती है और पुचकारने लगती है कि सो जा। कोई भीतर होश से भरा हुआ है कि बच्चा बीमार है। बहुत लोग इकठ्ठे सो जांए और फिर आधी रात में आकर कोई बुलाने लगे राम ! राम ! सारे लोग सो रहे हैं, किसी को सुनायी नहीं पड़ेगा लेकिन जिसका नाम राम है वह आंख खोलकर कहेगा, "कौन बुलाता है ? आधीरात को, कौन परेशान करता है ?" आधी रात की निद्रा में भी किसी को पता है कि मेरा नाम राम है। इस नींद में भी कोई होश कोई चेतना (Consious ness) बनी रहती है। कोई चेतना है, कोई अंतरधारा

(Under current) है। उस बूढ़े ने कहा फिक्र मत कर। हम तो चुनौती खड़ी करेंगे, भीतर जो सोया है वह जागना शुरू हो जायगा। जागने का एक ही सूत्र है, चुनौती (Challenge)। जितनी बड़ी चुनौती भीतर है, उतना बड़ा जागरण होता है। कितने धन्यभागी हैं वे लोग जिनके जीवन में बड़ी चुनौतियां होती हैं। दूसरे दिन से हमला शुरू होगा। रात सम्राट सोता और हमले होते। आठ दस दिन में फिर वही हालत हो गई। फिर हड्डी हड्डी दुखने लगी लेकिन एक महीना पूरे होते होते सम्राट को पता चला कि बूढ़ा ठीक कहता है। बूढ़े अक्सर ठीक कहते हैं। लेकिन जवान सुनते ही नहीं। ओर जबतक उन्हें समझ आती है तबतक वे भी बूढ़े हो जाते हैं। फिर दूसरी जवानी उन्हें लौट नहीं सकती। तो समझा और उसने कहा कि ठीक कहते थे शायद आप। अब नींद में भी मेरे हाथ संभलने लगे। रात नींद में गुरु आता दबे पांव, नींद में से जाग आता वह युवक, बैठ जाता और कहता ठीक है माफ करिये मैं जाग गया हूं। अब कष्ट मत उठाइये मारने का। नींद में भी हाथ रात भर उसकी ढाल पर ही बना रहता था। नींद में भी ढाल उठती है। तीन महीने पूरे हुए और तब नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। गुरू ने कहा क्या हुआ इन तीन महीनों में। दूसरा पाठ पूरा होता है। उस सम्राट ने कहा बड़ा हैरान हूं। पहले तीन महीने में विचार खो गया, दूसरे तीन महीने में सपने खो गये, नींद खो गई, रात भर सपने नहीं। मैं तो सोचता था कि बिना सपने के नींद ही नहीं हो सकती। अब मैं जानता हूं कि सपने वालों को भी कोई नींद होती है? अद्भुत शान्ति छा गई भीतर, एक शून्यता, एक मौन पैदा हो गया। मैं बड़े आनन्द में हूं। तो उसके गुरू ने कहा जल्दी मत कर। बड़ा आनन्द अभी थोड़ा दूर है। यह तो केवल आनन्द की शुरुआत की झलक है। जैसे कोई आदमी बगीचे के पास पहुंचने लगे तो ठंडी हवाएं आने लगती हैं, खुशबू हवा में आ जाती है। अभी बगीचा आया नहीं लेकिन बगीचे की खबर आनी शुरू हो गई है। अभी आनन्द मिला नहीं। केवल बाहरी खबर मिलनी शुरू हुई हैं। कल से तेरा तीसरा पाठ शुरू होगा। उसने कहा दो ही अवस्थाएं होती हैं जागने की और सोने की॥

तीसरा पाठ क्या है? तो उस बूढ़े ने कहा, कल से असली तलवार से हमला होगा। अब तक नकली तलवार से हमला किया है। वहयुवक बोला यह भी गनीमत थी कि आप लकड़ी की तलवार से हमला करते थे। यह तो जरा ज्यादा हो जाएगी बात। असली तलवार से हमला! अगर मैं एक भी बार

चूकगया तो जान गई। तो उस बूढ़े ने कहा, जब यह पक्का पता हो कि एक भी बार चूका कि जान गई तब कोई भी नहीं चूकता है। चूकता आदमी तभी तक है जबतक उसे पता चलता है कि चूक भी जाऊं तो कुछ जाएगा नहीं। एक बार पता चला कि चूका कि जान गई तब प्राण इतने ऊर्जा से चलते हैं कि फिर चूकने का कोई मौका नहीं रहता। उस बूढ़े ने कहा, "मेरा गुरू था जिसके पास मैं सीखता था, उसने मुझे एक दिन सौ फुट ऊंचे दरख्त पर चढ़ा दिया। वह मुझे दरख्त पर चढ़ाना सिखाता, पहाड़ों पर चढ़ना सिखाता, नदियों में तैरना सिखाता, झीलों में डूबना सिखाता। वह बड़ा अजीब गुरू था। वह कहता था जो पहाड़ पर चढ़ना नहीं जानता है वह जीवन में चढ़ना क्या जानेगा। जो झीलों की गहराइयों में डूबना नहीं जानता वह प्राणों की गहराइयों में डूबना क्या जानेगा। वह बड़ा अजीब गुरू था। उसने मुझसे एक दरख्त पर चढ़ा दिया। मैं नया नया चढ़ा था। जब मैं सौ फुट ऊपर पहुंच गया और मेरे प्राण कंपते थे कि हवा का एक झोंका भी कहीं जान लेने वाला न बन जाये। पैर का जरा सरक जना भी मौत न बन जाये वह गुरू चुपचाप आंख बन्द किये झाड़ के पास बैठा था। फिर मैं धीरे धीरे उतरने लगा। जब मैं जमीन के बिल्कुल करीब आ गया, कोई आठ दस फुट दूर रह गया तब वह बूढ़ा जैसे नींद से उठ गया और खड़ा हो गया और कहने लगा—सावधान! बेटे संभलकर उतरना! होश संभालकर उतरना। मैंने कहा पागल हो गये हैं आप। जब जरूरत थी सावधानी की तब आंख बन्द किये सपने देख रहे थे और अब जब मैं नीचे आ गया हूं, अगर गिर भी जाऊं तो कोई खतरा नहीं है। तब आपको होशियारी की याद दिलानेका ख्याल आया। वह बूढ़ा कहने लगा मैं अपने अनुभव से जानता हूं जब तू सौ फुट पर था तब किसी को सावधान करने की कोई जरूरत नहीं थी। तू खुद ही सावधान था। और अभी अभी मैंने देखा हैकि जैसे जैसे जमीन करीब आने लगी है, तुम गैरसावधान होना शुरू हो गये। नींद पकड़ गई है तुझे। तो मैं चिल्लाया कि सावधान। क्योंकि मैंने जीवन में देखा है कि लोग ऊंचाई से कभी नहीं गिरते, नीचे आने से गिर जाते हैं और मर जाते हैं। मैंने आजतक जिन्दगी में देखा नहीं कि कोई आदमी ऊंचाई से गिरा हो। लोग निचाई में गिरते हैं और मर जाते हैं इसलिए तुझे सावधान कर दिया।" उस बूढ़े ने कहा कल से असली तलवार आती है और कल से असली तलवार आ गई थी। लेकिन बड़ा हैरान हुआ वह सम्राट। लकड़ी के तलवार की तो बहुत चोटें उसके शरीर पर लगी थीं लेकिन असली तलवार की तीन

महीने में एक भी चोट नहीं मारी जा सकी। तीन महीने पूरे होने को आ गये। उसका मन एक शान्ति का सरोवर हो गया। उसका अहंकार कहीं दूर हट गया किसी रास्ते पर। पता नहीं कहां रह गया। जैसे जीर्ण शीर्ण वस्त्र छूट जाते हैं या सांप अपने केंचुल को छोड़कर जैसे आगे बढ़ जाते हैं ऐसेही वह अपने अहंकार को कहीं पीछे छोड़ आया। याद भी नहीं रहा कि कभी 'मैं' भी था। इतनी शान्ति हो गई है कि वहां कोई लहर भी नहीं उठती है उस झील में। तीन महीने पूरे होने को आ गये हैं। आज आखिरी दिन है। कल वह बिदा हो जाएगा। उसके मन में ख्याल आया सुबह सुबह सूरज निकला है। वह बैठा है झोपड़े के बाहर। उसका गुरू काफी दूर पर एक दरख्त के नीचे बैठा है और कोई किताब पढ़ रहा है। अस्सी साल का वृद्ध। उसके मन में ख्याल आया कि इस बूढ़े ने नौ महीने तक मुझे एक क्षण भी आलस्य में नहीं जाने दिया। एक क्षण भी प्रमाद नहीं करने दिया। हमेशा जगाये रखा। सावधान रखा। कल तो मैं बिदा हो जाऊंगा। यह गुरू भी उतना सावधान है या नहीं यह भी तो मैं देख लूं। तो उसने सोचा कि उठांऊ तलवार और आज उस बूढ़े पर पीछे से हमला कर दूं। मुझे भी तो पता चल जाये कि हमें ही सावधान किया जाता है या ये सज्जन खुद भी सावधान हैं। उसने इतना सोचा ही था, सिर्फ सोचा ही था। अभी कुछ किया नहीं था, बस सोचा ही था। और वह गुरू चिल्लाया उस झाड़ के नीचे से कि बेटा ऐसा मत करना मैं बूढ़ा आदमी हूं। वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा मैंने कुछ किया नहीं। मैंने केवल सोचा है। तो उस बूढे ने कहा तुम थोड़े दिन और ठहर जाओ जब चित्त बिल्कुल शान्त हो जाता है और मौन हो जाता है, जब अहंकार बिल्कुल बिदा हो जाता है और जब विचार शून्य और शान्त हो जाते हैं, तब दूसरे के पैरों की ध्वनि ही नहीं सुनाई पड़ती, दूसरों के चित्र की पद ध्वनियां भी सुनाई पड़ने लग जाती हैं। तब दूसरों के विचारों की पगध्वनियां भी सुनई पड़ने लग जाती हैं। विचार भी सुनाई पड़ने लगते हैं दूसरों के। हम तो ऐसे अन्धे हैं कि हमें दूसरों के कृत्य ही दिखाई नहीं पड़ते। विचार सुनाई पड़ना तो बहुत दूर की बात है।

उस बूढ़े ने कहा था जिस दिन इतनी शान्त हो जाता है चित्त, इतना जागरुक हो जाता है, तो उस दिन ही वह जो अदृश्य है उसकी झलक मिलती है। उस परमात्मा के पैर सुनाई पड़ने लग जाते हैं जिसके कोई पैर नहीं हैं। उस परमात्मा की वाणी आने लगती है जिसकी कोई वाणी नहीं है। उस परमात्मा का स्पर्श मिलने लगता है जिसकी कोई देह नहीं है। सब तरफ से वह मौजूद हो जाता है। जिस दिन हमारे भीतर शांति की वह ग्राहकता उत्पन्न होती है उसी

दिन वह सब तरफ मौजूद हो जाता है। फिर वृक्ष की पत्तियों में वही है, राह के पत्थरों में वही है, सागर की लहरों में भी, आकाश के बादलों में भी, आदमियों की आंखों में भी, पशुपक्षियों के प्राणों में भी, फिर सब में वही है। जिस दिन भीतर जीवन की परध्वनि सुनने की ग्राहकता (Receptivity) उपलब्ध हो जाती है, पात्रता उपलब्ध हो जाती है उसी दिन उसके दर्शन मिलने शुरु हो जाते हैं।

पता नहीं उस सम्राट का फिर क्या हुआ। पता नहीं उस बूढ़े फकीर का फिर क्या हुआ लेकिन मुझे और आपको उससे प्रयोजन ही क्या है। जहां उनकी कहानी खतम होती है अगर वहीं आपकी कहानी शुरू हो जाये तो बात पूरी हो जाएगी। क्या आप भी अपने भीतर इतने जागने का सतत श्रम करने को तत्पर हैं? अगर हां तो जीवन की सम्पदा आपकी है। अगर हां, तो परमात्मा खुद आपके द्वार चला आयेगा। आपको उसके द्वार जाने की जरूरत नहीं। यह बात कठिन मालूम पड़ सकती है क्योंकि जो लोग चलने के आदी नहीं होते, यात्राएं उन्हें बहुत बड़ी और जटिल दिखाई देती हैं। उन्हें डर लगता है कि छोटे से पैर हैं अपने पास। हजारों मील की यात्रा हम कैसे पूरी कर सकेंगे? लेकिन अगर एक कदम भी उठाने के लिये वे तैयार हो गये तो हर उठाया गया कदम आने वाले कदम के लिए भूमि बन जाता है, बल बन जाता है, शक्ति बन जाता है और छोटे से कदमों से आदमी पूरे पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है और छोटे से मन की सामर्थ, छोटे से कामों की सावधानी, थोड़े से हृदय की शान्ति से मनुष्य परमात्मा की परिक्रमा भी कर सकता है।

महायुद्ध या महाक्रांति ?

(इंदौर लायंस क्लब में प्रवचन)

संकलन : निकलंक

मनुष्य की आज तक की सारी ताकत जीने में नहीं, मरने और मारने में लगी है। पिछले महायुद्ध में पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई। पहले महायुद्ध में कोई साढ़े तीन करोड़ लोग मारे गये। थोड़े से ही बरसों में साढ़े आठ करोड़ लोग हमने मारे हैं। लेकिन शायद मनुष्य को इससे कोई सोच-विचार पैदा नहीं हुआ। हर युद्ध के बाद और नये युद्ध के लिए हमने तैयारियां की हैं। इससे यह साफ है कि कोई भी युद्ध हमें यह दिखाने में समर्थ नहीं हो पाया है कि युद्ध व्यर्थ हैं। पांच हजार वर्षों में सारी जमीन पर १५ हजार युद्ध लड़े गये हैं। पांच हजार वर्षों में पन्द्रह हजार युद्ध बहुत बड़ी संख्या है यानी तीन युद्ध प्रति वर्ष ! हम करीब-करीब लड़ते ही रहे हैं। कोई अगर पांच हजार वर्षों का हिसाब लगाये तो मुश्किल से तीन सौ वर्ष ऐसे हैं जब लड़ाई नहीं हुई। यह भी इकठ्ठे नहीं, एक-एक, दो-दो दिन जोड़कर। तीन सौ वष छोड़कर हम पूरे वक्त लड़ते रहे हैं। या तो मनुष्य का मस्तिष्क विकृत है या युद्ध हमारा बहुत बड़ा आनन्द है अन्यथा विनाश के लिए ऐसी आतुरता और मृत्यु के लिए ऐसी गहरी आकांक्षा को समझना कठिन है। जरूर कुछ गड़बड़ हो गई है। लेकिन आज कुछ गलत हो गया है ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है। सदा से कुछ गड़बड़ है। कोई यह कहता हो कि पहले आदमी बहुत अच्छा था तो भूल भरी बातें कहता है।

आदमी सदा से ऐसा है। ताकत इतनी उसके हाथ में नहीं थी इसलिए इतने विकराल रूप में वह प्रगट नहीं हो सका था। आज उसे मौका मिला है। विज्ञान ने शक्ति दे दी है हाथ में। अब पूर्ण विनाश (Total distruction)

हो सकता है, अब हम पूरी तरह विनाश कर सकते हैं। इरादे तो हमारे बहुत दिन से थे कि हम पूरी तरह विनाश करें लेकिन थोड़े बहुत आदमियों को मार के रुक जाते थे। हमारे साधन कमजोर थे। हिंसा करने का मन तो सदा से था लेकिन हिंसा करने की ताकत हमारी सीमित थी। आज ताकत हमारी असीमित है। आज हम सब कुछ कर सकते हैं। कोई पचास हजार उद्जन बम तैयार हैं और यह आंकड़ा पुराने हैं—१९६० के। इस बीच आदमी ने बहुत विकास किया है। गंगा में बहुत पानी बह गया है। उद्जन बमों की संख्या और बड़ी हो गयी होगी। वैसे पचास हजार उद्जन बम जरूरत से ज्यादा हैं इस पूरी पृथ्वी को नष्ट करने के लिए, बहुत ज्यादा हैं। अगर इस तरह की सात जमीनें नष्ट करनी हों तो काफी हैं। तीन अरब आदमियों को मारने के लिए पचास हजार उद्जन बम बहुत ज्यादा हैं। बीस अरब आदमी मारने हों तो भी उनसे मारे जा सकते हैं या यह भी हो सकता है कि एक आदमी को सात-सात दफा मारने का मन हो तो मारा जा सके। हमने अंतिम तैयारी पूरी कर ली है। कोई धोखा धड़ी न हो जाय, कोई भूल-चूक न हो जाय। एकाध दफा मारें और आदमी न मर पाये तो एक बार, दो बार, सात बार तो कोई भी नहीं बच पायेगा। वैसे आदमी एक ही दफा में मर जाता है। आज तक का अनुभव तो यही है कि किसी आदमी को दो बार नहीं मारना पड़ता। लेकिन फिर भी समय और वक्त को ख्याल में रखकर हमने इतना इन्तजाम किया है कि हम हर आदमी को सात बार मार सकते हैं। किसलिए यह तैयारी है? किसलिए यह आयोजन है? जरूर आदमी के मन में कोई पागलपन है, कोई विक्षिप्तता (Insanity) है। असल में आदमी विक्षिप्त न हो तो मिटाने की आकांक्षा पैदा नहीं होती। पागल का मन तोड़ने का होता है, स्वस्थ मन निर्मित करना चाहता है, सृजन करना चाहता है, कुछ बनाना चाहता है, जीवन को विकसित करना चाहता है। पागल का मन तोड़ना चाहता है, मिटना चाहता है। क्यों? पागल होता है भीतर दुखी। अपने दुख का बदला वह सबसे लेना चाहता है। भीतर आदमी दुखी होता है तो वह दूसरे को दुखी करना चाहता है। वह दुख में है तो वह किसी को भी सुख में देखने में असमर्थ है। वह दुख में है, तो वह जो भी करेगा उससे परिणाम में दूसरे को दुख मिलेगा क्योंकि जो मेरे पास है, वही मैं दे सकता हूं। जो मेरे पास नहीं है उसे मैं नहीं दे सकता। अगर मैं दुखी हूं तो मैं जो भी करूंगा, मैं चाहे सेवा करूं, चाहे सुधार करूं। चाहे मैं कहूं कि मैं सेवक हूं, मैं समाज का सुधारक हूं। लेकिन अगर मैं भीतर दुखी हूं तो मेरी सेवा आपके गले में बोझ हो जायगी और अगर मैं दुखी हूं तो मेरा सुधार खतरनाक सिद्ध होगा। चाहे मैं यह कहूं कि मैं विश्वशांति के लिए कोशिश करता हूं लेकिन

अगर मैं दुखी हूं तो मेरी शांति की सारी कोशिश युद्ध लायेगी। सारे राजनीतिज्ञ मिलकर दुनिया में युद्ध लाते हैं लेकिन कहते हैं हम शांति के लिए लड़ रहे हैं। आज तक जमीन पर कोई राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं हुआ जिसने यह कहा हो कि हम युद्ध के लिए युद्ध करते हैं। सभी राजनीतिज्ञ यह कहते हैं कि हम शांति के लिए युद्ध करते हैं। सभी यह कहते हैं कि आदमी अच्छा हो सके, जीवन सुखी हो सके इसलिए हम लड़ते हैं। असल में जो भीतर दुखी है, वह जो भी करेगा उसका परिणाम शुभ और मंगलदायी नहीं हो सकता है। हम सब दुखी हैं और हम सब पीड़ित हैं। दुखी आदमी एक ही सुख जानता है– दूसरे को दुख देने का सुख, और कोई सुख नहीं जानता। हम जिन सुखों को सोचते हैं कि इनसे तो किसी के दुख का कोई सम्बन्ध नहीं, वे भी किसी के दुख पर खड़े होते हैं।

मेरे एक मित्र हैं। एक गांव में उन्होंने मकान बनाया है। उस गांव में सबसे बड़ा मकान उन्हीं का था। वे बड़े सुखी थे अपने मकान को लेकर। फिर अभी कोई एक और आदमी ने आकर उनके पड़ोस में ही और बड़ा मकान बना दिया और वे दुखी हो गये। उनका मकान उतना का उतना है। इस बार उनके घर में मेहमान था तो वे दुखी थे और कह रहे थे कि मुझे बड़ा मकान बनाना अब जरूरी है। मैंने कहा, "आपका मकान उतना का उतना है, आप अप्रसन्न क्यों हैं? आपके मकान को तो पड़ोसी की छाया भी नहीं है?" लेकिन पड़ोस में एक बड़ा मकान हो गया तो वह दुखी हो गये तो मैंने उनसे कहा कि अब समझ लें कि जब आप सुखी थे तो आप अपने मकान के कारण सुखी नहीं थे, पास में जो झोंपड़े हैं, उनके कारण सुखी रहे हैं। वह जो झोंपड़े वाले को हम दुख दिये हैं बड़ा मकान बनाकर, वह है हमारा सुख। बड़ा मकान हमें कोई सुख नहीं दे रहा है क्योंकि उससे बड़ा मकान खड़ा हो जाता है तो हम दुखी हो जाते हैं। एक छोटा–सा बच्चा भी अपनी कक्षा में प्रथम आ जाता है तो कोई यह न सोचे कि उसे प्रथम आने में सुख मिला है। तीस लोगों को पीछे छोड़ देने का जो दुख दिया है, उसका सुख आता है और कोई सुख नहीं। अगर वह अकेला हो अपनी कक्षा में तो पहला नम्बर पास होगा लेकिन वह सुखी नहीं होगा लेकिन तीस बच्चों को जब वह पीछे छोड़ देता है तो सुखी हो जाता है।

हमारा सारा जीवन, चूंकि हम दुखी हैं इसलिए ईर्ष्या के सिवाय और हम कोई सुख नहीं जानते हैं। और अगर सारी जमीन पर सारे लोग दूसरे को दुखी करने में ही सुख जानते हों तो यह जमीन अगर नर्क हो जाय तो इसमें आश्चर्य क्या है। यह जमीन नर्क हो गयी है। सब कुछ है हमारे पास कि हम स्वर्ग बना

सकते थे। लेकिन आदमी हमारा रुग्ण है इसलिए हमने नर्क बना लिया है। आज जितना हमारे पास है, मनुष्य के पास कभी नहीं था। आज जितनी शक्ति और सम्पदा हमारे पास है, आदमी के पास कभी भी नहीं थी लेकिन आदमी है रुग्ण इसलिए जो कुछ हमारे पास है वही हमारा शत्रु सिद्ध हो रहा है। और यह संभावना है कि हो सकता है दस पांच वर्षों से ज्यादा हमारे जीवन की उम्र भी न हो। एक भी राजनीतिज्ञ का दिमाग खराब हो जाये तो सारी दुनिया के नष्ट होने के करीब हम खड़े हैं। और राजनीतिज्ञ के दिमाग खराब होने में अड़चन नहीं है क्योंकि जिसका दिमाग खराब नहीं होता है वह कभी राजनीति में जाता ही नहीं है। किसी भी एक का दिमाग खराब हो जाये तो आज उस एक आदमी के हाथ में इतना खतरा है कि वह सारी मनुष्य जाति को डुबा दे। मनुष्य जाति को ही नहीं, सारे कीड़े मकोड़ों को, पशु पक्षियों को, पौधों को, सबको नष्ट कर दे। हमारे पास जो ताकत है, आप कल्पना नहीं कर सकते हैं उतनी। एक उद्जन बम विस्फोट हो तो इतनी गर्मी पैदा होती है जितनी सूरज पर है। सूरज जमीन पर उतर आये तो क्या होगा? सौ डिग्री पर पानी उबलता है और आपको उसमें डाल दें तो कैसा जी होगा? लेकिन सौ डिग्री कोई गर्मी है? १५०० डिग्री गर्मी पर लोहा पिघलकर पानी हो जाता है। आपको १५०० डिग्री गर्मी में डाल दिया जाय– आप बचेंगे? २५०० डिग्री पर लोहा भी भाप बनकर उड़ने लगता है लेकिन २५०० डिग्री भी कोई गर्मी नहीं है। उद्जन बम के विस्फोट से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है दस करोड़ डिग्री। उस दस करोड़ डिग्री में क्या बचेगा? जीवन के बचने की कोई भी संभावना नहीं है। किसी प्रकार का जीवन नहीं बचेगा। यह हमारे हाथ में है और चित्त हमारा दुखी, बेचैन और परेशान है और हम जो भी करते हैं उससे यह बेचैनी कम नहीं होती। यह बढ़ती चली जा रही है। हम जो भी कर रहे हैं उससे हमारा दुख भी कम नहीं होता है, वह भी बढ़ता चला जा रहा है। शायद हमें यह दिखायी ही नहीं पड़ता है कि दुख के पीछे क्या है? शायद हमें यह भी नहीं दिखायी पड़ता है कि कौन से मूल कारण हैं जो हमें इस पीड़ा में दौड़ाये चले जा रहे हैं। शायद हमें ख्याल में भी न हो कि इस सब के पीछे किन बातों का हाथ है।

और अगर वे बातें दिखायी न पड़ें तो हम जो भी करेंगे, हम चाहे सेवा करें, चाहे स्कूल खोलें, चाहे मरीजों के लिए अस्पताल खोलें, सब बेकार हैं, क्योंकि दूसरी तरफ हम जो कर रहे हैं उससे हमारे अस्पताल रखे रह जायेंगे, हमारी सेवाएं रखी रह जायेंगी। हीरोशिमा में जिस दिन एटम गिरा,

एक छोटा–सा बच्चा अपने स्कूल का बस्ता लेकर पढ़ने के लिए घर की सीढ़ियां चढ़ रहा था। होम वर्क करना होगा उसे और एटम गिर गया। वह वहीं सूख के दीवाल से चिपक गया। अपने बस्ते और किताबों के साथ राख हो गया। मुझे किसी मित्र ने तस्वीर भेजी उसकी। हमारे बच्चे जिनके लिए हम स्कूल खड़े कर रहे हैं हमारे बीमार जिनके लिए हम अस्पताल बना रहे हैं हमारे गरीब जिनके लिए हम गरीबी दूर करने की कोशिश में लगे हुए हैं। हमारे खेत जिनकी हम उत्पादकता बढ़ा रहे हैं। हमारी फैक्टरियाँ, जिनमें हम आदमियों के लिए सामान बना रहे हैं, सब बेकार हैं क्योंकि दूसरी तरफ आदमी तैयारी कर रहा है कि इन सबको वह खाक कर दे, राख कर दे, और ये दोनों काम हम कर रहे हैं। बड़े आत्म विरोध (Self contradiction) में हम हैं। एक आदमी घर में बगिया भी लगा रहा हो और दूसरी तरफ से आग भी लगा रहा हो और यह भी ख्याल करता हो कि बगिया को सींचूं और फूल आयेगा और एक तरफ से आग भी लगा रहा है उसी मकान में तो उस आदमी को हम पागल नहीं तो और क्या कहेंगे ? उससे कहेंगे कि बगिया में बेकार मेहनत कर रहे हो जब कि दूसरी तरफ से आग भी लगाये जा रहे हो।

लेकिन हम सारे लोग यही कर रहे हैं और हमको दिखायी नहीं पड़ता है और हमको दिखायी भी नहीं पड़ेगा क्योंकि हमने कुछ ऐसी जड़ताएं पाल ली हैं अपने मन में कि दिखायी नहीं पड़ सकता। ये इतने झंडे लगे हुए हैं। हमारा झंडा सबसे ऊपर है। यह पागलपन का लक्षण है, यह युद्ध का कारण है। हमने अभी प्रार्थना की है कि हम अपने झंडे को सब राष्ट्रों से ऊपर रखेंगें। वह सब राष्ट्र भी यही प्रार्थनाएं कर रहे होंगे। फिर क्या होगा अगर हम अपने झंडे को ऊंचा रखना चाहते हैं और दूसरा भी अपने झंडे को ऊंचा रखना चाहता है और तीसरा भी ? यह हमारा अहंकार नहीं तो और क्या है कि हमारा झंडा ऊंचा रहे। व्यक्ति का अहंकार होता है, कौम का अहंकार होता है, राष्ट्र का अहंकार होता है। मेरा राष्ट्र ऊंचा रहे। क्यों रहे आपका राष्ट्र ऊंचा ? जमीन विभाजित नहीं है। उस पर कहीं कोई रेखा नहीं है। और दुनिया का जिस दिन राजनीतिज्ञों से छुटकारा हो जायेगा उस दिन वहां कोई राष्ट्र भी नहीं होगा। राजनीतिज्ञ बड़ी बीमारी है, उसी की बाई प्रोडेक्ट राष्ट्र है। उसी से पैदा हुई बीमारी है और जब एक राष्ट्र कहेगा कि मैं हूं ऊपर और दूसरा राष्ट्र कहेगा मैं हूं ऊपर, मैं बड़ा हूं, मैं जगत का गुरू हूं। और यही जमीन है जहां भगवान जन्म लेते रहे हैं और यही जमीन है जहां सबसे ऊंचे लोग पैदा होते हैं। अगर ये बेवकूफियां

जारी रहेंगी तो युद्ध बच नहीं सकता है। यहीं तो सारा पागलपन है। व्यक्ति का अहंकार तो हमें दिखायी पड़ता रहा है और हम एक एक आदमियों से कहते हैं कि अहंकारी मत बनो, विनम्र बनो। लेकिन राष्ट्रीय अहंकार हमें आज तक भी दिखायी नहीं पड़ता और जब तक राष्ट्रीय अहंकार हमें दिखायी नहीं पड़ेगा, हम युद्धों से बच नहीं सकेंगे। आज तक जमीन इसीलिए युद्धों से परेशान रही है कि अब तक हम राष्ट्रीय अहंकार से बचने में समर्थ नहीं हुए हैं और हमको दिखायी भी नहीं पड़ता। दिखायी नहीं पड़ने का भी कारण है। अगर कोई आदमी कहे कि मैं सबसे बड़ा आदमी हूं तो बाकी सबके अहंकार को चोट लगेगी और सब उसके खिलाफ खड़े हो जायेंगे कि यह बड़ा गड़बड़ आदमी है, बीमार या पागल है– कहता है कि सब से बड़ा मैं हूं। लेकिन हम सब कसते हैं कि हमारा राष्ट्र सबसे बड़ा है तो किसी के अहंकार को चोट नहीं लगती है क्योंकि हम साथ एक राष्ट्र के लोग हैं। दूसरे राष्ट्र के लोगों को लगती होगी चोट। वह हमारे सामने नहीं हैं। वह तो हमारे सामने तभी आते हैं जब युद्ध होता है। दो राष्ट्र आमने सामने युद्ध में खड़े होते हैं और कभी खड़े नहीं होते। हम सब के सामूहिक अहंकार को जो जो उत्तेजना दी जाती है उससे हम सब सहमत होते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं। बिलकुल ठीक कह रहे हैं कि भारत सबसे महान राष्ट्र है। हम सब खुश होते हैं क्योंकि हम सब के अहंकार को सामूहिक तृप्ति दी जा रही है। एक आदमी कह दे कि मैं बड़ा हूं तो हम झगड़ने को खड़े हो जाते हैं। वैसे हर आदमी अपने मन में कहता रहता है कि मैं बड़ा हूं।

गांधी इंग्लैंड गये थे गोलमेज कांफ्रेंस में। उनके एक सेक्रेटरी ने बर्नाड शा से जाकर पूछा कि आप गांधी जी को महात्मा मानते हैं या नहीं? महात्माओं के शिष्यों को यह बड़ी फिक्र होती है कि दूसरे लोग भी उनके महात्मा को महात्मा मानते हैं कि नहीं। तो बर्नाड शा से उनके सेक्रेटरी ने पूछा कि आप गांधी को महात्मा मानते हैं कि नहीं? बर्नाड शा ने कहा कि महात्मा वे जरूर हैं लेकिन नम्बर दो हैं क्योंकि नम्बर एक महात्मा तो मैं हूं। दुनिया में दो ही महात्मा हैं, एक मैं और एक यह गांधी, लेकिन गांधी नम्बर दो है, नम्बर एक मैं हूं। वह बड़े दुखी हुए होंगे क्योंकि शिष्य बड़े दुखी होते हैं इन बातों से क्योंकि शिष्यों के अहंकार की तृप्ति इसी में होती है कि उसका महात्मा नम्बर एक हो। उसका महात्मा नम्बर दो हो तो शिष्य भी महात्मा नम्बर दो का शिष्य हो जाता है न। वह दुखी वापस लौटे और उन्होंने गांधी को कहा कि यह बर्नाड शा बड़ा अहंकारी मालूम होता है और बड़ा दम्भी मालूम होता है। अपने ही मुंह से

कहत। है कि मैं नम्बर एक हूं, आप नम्बर दो हैं। गांधी ने कहा, "वह बड़ा सीधा और सरल आदमी मालूम होता है। दिल में तो सभी के ऐसा होता है कि मैं नम्बर एक हूं। कुछ लोग कह देते हैं, कुछ लोग कहते नहीं हैं। वह सीधा आदमी है।"

हम सबके मन में यह होता रहता है कि मैं नम्बर एक हूं और इस बात को सिद्ध करने के लिए जीवन में हजार उपाय करते हैं। बड़ा मकान बनाते हैं इसलिए ताकि बिना कहे लोग जान लें कि हम नम्बर एक हैं। शानदार कपड़े पहनकर खड़े हो जाते हैं ताकि कहना न पड़े और दूसरे जान लें कि मैं नम्बर एक हूं। हम जीवन भर यह कोशिश करते हैं कि बिना कहे पता चल जाय कि मैं नम्बर एक हूं क्योंकि कहने से तो झगड़ा खड़ा हो जाता है। बिना कहे सबको पता चल जाये जीवन की सारी दौड़ यही है। नम्बर एक होने का सबका ख्याल है। एक मजाक अरब में प्रचलित है। अरब में कहा जाता है कि भगवान जब आदमियों को बनाता है और बना कर उनको जब दुनिया में भेजने लगता है तो हर आदमी से आकर कान में कह देता है, "तुमसे अच्छा आदमी मैंने कभी बनाया ही नहीं।" भगवान मजाक कर देता है हर आदमी के साथ, फिर हर आदमी जिन्दगी भर मन ही मन में यह सोचता रहता है कि मुझसे अच्छा आदमी तो कोई है ही नहीं।

एक एक व्यक्ति का अहंकार रोग है, यह तो हमें दिखायी पड़ता है क्योंकि वह हमारे संघर्ष में आ जाता है लेकिन राष्ट्रीय अहंकार भी रोग है, सांप्रदायिक अहंकार भी रोग है, जातीय अहंकार भी रोग है, यह हमें दिखायी नहीं पड़ता है क्योंकि समूह में हम होते हैं और हमारी टक्कर नहीं होती। अगर एक जगह सभी लोग एक ही बीमारी से परेशान हो जायं तो वह बीमारी दिखायी पड़नी बन्द हो जायगी। पागलखानों में पागलों को ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि दूसरा आदमी पागल है या मैं पागल हूं। वह सब बिल्कुल ठीक मालूम पड़ते हैं, वे सभी एक ही बीमारी से ग्रस्त हैं। एक बार ऐसा हुआ कि किसी गांव में एक जादूगार आया और उसने एक कुएं में एक पुड़िया डाल दी और कहा कि जो भी इसका पानी पियेगा वह पागल हो जायगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था, एक राजा का कुआं था। राजा के कुएं पर राजा पानी पीता था, उसका वजीर पानी पीता था, उसकी रानी पानी पीती थी। गांव के कुएं से पूरा गांव पानी पीता था। पागल हों या कुछ भी हों, पानी बिना पिये तो कोई रह भी नहीं सकता। थोड़ी देर लोग रुके लेकिन सांझ होते होते सबको

पानी पीना पड़ा। गांव भर पागल हो गया। सिर्फ राजा, वजीर और रानी पागल नहीं हुए लेकिन गांव में यह खबर फैलने लगी ऐसा मालूम होता है कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। स्वाभाविक था। गांव सारा पागल हो गया था। जो पागल नहीं था वह पागल दिखायी पड़ने लगा। रात होते होते गांव में एक सभा हुई और गांव के सारे लोगों ने सोचा कि कुछ गड़बड़ हो गयी है। राजा और वजीर पागल मालूम होते हैं। उनको बदले बिना ठीक न होगा। उनको बदल देना चाहिए। कोई और राजा बनाना चाहिये। उसके सिपाही भी पागल हो गये थे, उसके सैनिक भी, उसके पहरेदार भी, सभी पागल हो गये थे। उसके बचाव का भी कोई उपाय नहीं था। उसने अपने वजीर को कहा कि अब क्या किया जाय? वजीर ने कहा, एक ही रास्ता है, हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। और राजा और वजीर भागे क्योंकि समय न चूक जाय और उन्होंने जाकर कुएं का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में जलसे मनाये गये उन्होंने खुशियां मनायीं, भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।

सामूहिक रूप से लोग पागल हो जायें तो किसी को दिखायी नहीं पड़ता। राष्ट्रीय अहंकार सामूहिक पागलपन है इसलिए हमें दिखायी नहीं पड़ता। हम सभी उसी के बीमार हो गये हैं। जब कोई कहता है, "महान देश है यह भारत-वर्ष" तो हमारे मन में यह ख्याल ही नहीं उठता है कि यह बड़े पागलपन की बात कह रहा है। जब कोई कहता है, दुनिया का गुरू है हमारा देश तो हमें ख्याल ही नहीं उठता कि यह पागलपन की बात कह रहा है। जब कोई कहता है कि भगवान इसी भूमि को पवित्र मानते हैं तो हम बड़े प्रसन्न होते हैं कि यह बहुत ही अच्छी बात है क्योंकि हम भी इसी भूमि में पैदा हुए हैं। और यह पागलपन सारी दुनिया के सभी लोगों को है। जमीन पर ऐसी कोई कौम नहीं है जिसको यह ख्याल न हो कि वह विशिष्ट है। जमीन पर कोई ऐसी कौम नहीं जिसे यह ख्याल न हो कि वह जो भी करती है, जो भी उसका जीवन है, वही श्रेष्ठ है।

पहले महायुद्ध में फ्रांस हारता चला जाता था। एक फ्रेंच जनरल ने एक अंग्रेज जनरल से पूछा कि क्या मामला है, हम हारते चले जा रहे हैं जर्मनी में? तुम किस भांति लड़ते हो, तुम्हारे लड़ने के ढंग क्या हैं? उस अंग्रेज जनरल ने कहा कि ढंग की तो बात छोड़ दो, जहां तक मैं समझता हूं भगवान हमारे पक्ष में हैं इसलिए हम जीतते हैं। उस फ्रेंच ने पूछा और भगवान क्या हमारे पक्ष में नहीं हैं? उस अंग्रेज ने कहा कि आज तक तुम्हें पता है कभी

अंग्रेजों को छोड़कर भगवान किसी और के पक्ष में रहा है? लेकिन फिर भी तुम ठीक से प्रार्थना करो तो शायद वह दयावान हो जाय और दयावान होने का एक कारण यह भी है कि तुम हमारे मित्र राष्ट्र हो। उस फ्रेंच ने कहा कि प्रार्थना तो हम हमेशा करते हैं। हमारी सैनिक टुकड़ियां भी युद्ध में जाने के पहले प्रार्थना करती हैं। उस अंग्रेज जनरल ने पूछा, "किस भाषा में प्रार्थना करते हो?" भगवान अंग्रेजी के सिवाय कोई भाषा नहीं समझता। "हिंदुस्तानियों को भी यह भ्रम है कि संस्कृत जो है, देववाणी है। भगवान सिर्फ संस्कृत ही समझता है, लेकिन इसपर कभी आप हंसे थे जिन्दगी में कि संस्कृत देवावाणी है लेकिन कोई अंग्रेज कहे कि अंग्रेजी देववाणी है तो हमको हंसी आ जाती है। हमको लगता है कि कैसी बेवकूफी है—अंग्रेजी और देववाणी। लेकिन संस्कृत देववाणी है, इसपर कभी हंसे थे? नहीं संस्कृत तो देववाणी है ही, उस पर हंसने की जरूरत क्या है! कौमें हैं एक दूसरे के पागलपन पर हंसती हैं लेकिन अपने पागलपन पर नहीं हंसती। वह वक्त आ गया है कि हमें यह खोजना होगा, पहचानना होगा कि यह राष्ट्रीय अहंकार कहीं रोग तो नहीं है।

यह रोग है। अगर यह बात स्पष्ट दिखायी दे सके कि यह राष्ट्रीयता (Nationality) रोग है। झंडे को ऊंचा रखने का ख्याल नासमझी है, अहंकार है, तो शायद हम एक नयी दुनिया के बनाने में समर्थ हो सकते हैं। शायद एक ऐसी दुनिया को बना सकें जहां कि राष्ट्रीय अहंकार न हो तो ही हम युद्ध के बाहर हो सकेंगे। और हमें क्यों इतना सुख मिलता है यह कहने में कि मैं बड़ा हूं आपसे, कभी इसपर भी सोचा है? चाहे व्यक्ति कहे, चाहे राष्ट्र कहे, सुख क्या है इसमें कि मैं आपसे बड़ा हूं? जो आदमी दुखी होता है, वह इसी तरह की थोथी बातें कहकर सुख अनुभव करता है। एक भिखमंगा सड़क के किनारे बैठकर कहता है कि मेरे बाप बादशाह थे, नवाब थे। वह भीख मांगता है। इस बात को कह कर कि उसके पिता बादशाह थे, वह अपने भीख मांगने के दुख को छिपा लेता है।

अहंकार दुख को छिपाने की कोशिश है। जो आदमी दुखी नहीं होता वह अहंकारी भी नहीं होता। जो आदमी आनंदित होता है, वह यह नहीं कहता है कि मैं बड़ा हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं। वह सिर्फ आनंदित होता है। उसे ख्याल भी नहीं आता है कि ये बातें भी कहने की हैं। यह सिर्फ दुखी और पीड़ित चित्त को ख्याल आते हैं कि मैं यह हूं। तो जो कौम जितनी नीचे गिरती जाती है, वह उतनी अपने अहंकार में फूल-फूलकर समझाने की कोशिश करने लगती

है। जितनी ज्यादा हीनता (Inferiority) का ख्याल होता है उतना अहंकार को घोषणा करने की प्रवृत्ति आती है। अहंकार हीनता के भाव को छिपाने का उपाय है।

नादिरशाह आता था मुल्क जीतने के लिए। किसी ज्योतिषी से उसने पूछा, "मैं जीतने को जा रहा हूं। मेरे हाथ देखो, लक्षण देखो कि मैं आदमी कैसा हूं? मैं जीत सकूंगा या नहीं?" उस ज्योतिषी ने कहा, "तुम आदमी जरूर छोटे होगे क्योंकि जीतने का ख्याल छोटे लोगों को ही पैदा होता है।" तो ज्योतिषी को नादिर ने मरवा डाला। लेकिन यह बात इतनी सच्ची है कि किसी ज्योतिषी को मारने से मिट नहीं सकती। छोटे लोगों को जीतने का ख्याल पैदा होता है ताकि वह यह सिद्ध कर सकें अपने और दूसरों के सामने कि मैं छोटा नहीं हूं। तैमूरलंग चीन को जीतने गया। तैमूर लंगड़ा था। रास्ते में उसने एक मुल्क जीता। उस मुल्क के राजा को उसने हथकड़ियों में बंधवाकर बुलवाया। जब वह राजा हथकड़ियों में बंध के सामने आया तो तैमूरलंग हंसने लगा। अपने सिहासन पर बैठा हुआ था। उस राजा ने कहा, "तैमूर हंसते हो तो बड़ी गलती करते हो। इस भूल में मत रहना कि तुमने आज मुझे जीत लिया है तो हमेशा जीतते चले जाओगे, किसी दिन हारोगे भी। जो जीतता है वह किसी दिन हारता भी है। हंसो मत, क्योंकि जो किसी की हार पर हंसता है, एक दिन उसे अपनी हार पर आंसू बहाने पड़ते हैं।" तैमूर ने कहा, "मैं हंसा ही नहीं इस कारण से। मैं तो किसी और बात से हंसा। तैमूर लंगड़ा था। एक पैर उसका लंगड़ा था और जिस राजा को उसने जीता था वह काना था। उसकी एक ही आंख थी। उसने कहा, "मैं तो इसलिए हंसा कि यह भगवान भी बड़ा अजीब है कि लंगड़े और काने को भी बादशाहत दे देता है। मैं इसलिए नहीं हंसा कि तुम हार गये। मैं तो इसलिए हंसा कि मैं हूं लंगड़ा और तुम हो काने। बड़ी अजीब बात है, लंगड़े और काने बादशाह हो जाते हैं। बात वहीं खत्म हो गयी लेकिन अगर मैं वहां मौजूद होता तो मैं तैमूर से कहता कि इसमें भगवान का कोई भी कसूर नहीं है। लंगड़ों और कानों के सिवाय बादशाहत कोई मांगता ही नहीं। इसमें भगवान का क्या कसूर?

यह हमारे भीतर जो लंगड़ापन और कानापन होता है जो हीनता होती है, वह हमारी जिन्दगी में एक बल बन जाती है भागने का, दौड़ने का। हमें अपने को सिद्ध करना है दूसरों के सामने कि मैं लंगड़ा नहीं हूं, मैं काना नहीं हूं, मैं कुछ हूं। तो जितना लंगड़ा-काना आदमी होता है, उतनी ज्यादा यह

दौड़ तेज हो जाती है। जितनी हीन वृत्त होती है उतनी महत्वाकांक्षा हो जाती है। फिर यह व्यक्तियों के तल पर भी होती है, राष्ट्रों के तल पर भी होती है। इसे थोड़ा समझना और इसको विदा करना जरूरी है।

राष्ट्रों का अहंकार जाना चाहिए और यह तभी जा सकता है, जब हमें दिखायी पड़ जाये कि यह रोग है। हम तो इसे महिमा समझते हैं इसलिए यह टिका हुआ है। हम तो इसे गौरव समझते हैं इसलिए टिका हुआ है। मैं तो कहूंगा, ऐसी प्रार्थनाएं करें जो मनुष्य के लिए हों, राष्ट्रों के लिए नहीं। राष्ट्रों ने मनुष्यता को नष्ट किया है। आने वाला दिन राष्ट्रों का दिन नहीं हो सकता है। आने वाला दिन सारी मनुष्य जाति का इकट्ठा दिन होगा। वे लोग जो सोचते-विचारते हैं, उन्हें ऐसी प्रार्थनाएं बन्द कर देनी चाहिये जो टुकड़े के लिए, हों पूरी अखंड मनुष्यता के लिए कोई चिन्ता करनी चाहिए। लेकिन हम सोचते भी नहीं हैं। हम खड़े हुए हैं विश्वशांति के लिए और हमको पता नहीं है, प्रार्थना हम राष्ट्र के लिए करते हैं तो विश्वशांति कैसे होगी? ये दोनों बातें विरोधी हैं। राष्ट्रों को जो मानता है वह विश्वशांति के पक्ष में नहीं हो सकता है। विश्वशांति की जिसकी आकांक्षा होती है उसे राष्ट्रों को मानने की गुंजाइश नहीं है। पांच हजार वर्ष की कथा देखिये उसमें आदमी की कथा क्या है? राष्ट्रों की कथा क्या है? क्या हुआ? अब भी हम उससे चिपके रहेंगे तो खतरा होगा लेकिन शायद हमें बोध नहीं है। हमें ख्याल नहीं है। चीजें चलती जाती हैं, हम उनका अनुभव नहीं करते हैं। चले जाते हैं, न हम सोचते हैं, न हम विचारते हैं। सारी दुनिया खंडित खड़ी है। खंडित जहां भी होंगे वहां युद्ध होना बहुत आसान है। हम हिंदुस्तान में युद्ध के लिए संग्राम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद आपको अभी ख्याल न हो कि संग्राम का अर्थ क्या है। संग्राम का अर्थ होता है, दो ग्रामों की सीमा। ग्राम का अर्थ गांव होता है, संग्राम का अर्थ दो गांवों की सीमा होता है। बड़ी अजीब बात है जिसका अर्थ है दो गांवों की सीमा, उसका अर्थ युद्ध भी है। असल में जहां सीमा बटती है वहीं से युद्ध शुरू हो जाता है। जहां रेखा है वहां युद्ध है, जहां सीमाएं हैं, वहां युद्ध हैं और राष्ट्र सीमा बनाते हैं। सीमा युद्ध लाती है। सीमा युद्ध लायेगी। तो अगर चाहनी हो शांति, तो सीमा से ऊपर उठना होगा। असीम को स्वीकार करना होगा तो शांति आ सकती है। जो सीमा को स्वीकार करता है वह कभी शांत नहीं हो सकता है। और हम सब तरह से सीमाओं को स्वीकार किये हुए हैं। हजार हजार तरह की सीमाएं हमने स्वीकार की है—राष्ट्रों की

सीमाएं जातियोंकी सीमाएं रंगों की सीमाएं, वर्णों की सीमाएं, चमड़ी की सीमाएं। न मालूम कितनी सीमाएं हैं। दर्शन की, धर्मों की, न मालूम कितनी सीमाएं हैं। आदमी की इतनी सीमाएं हमने बांध दी है कि आदमी करीब-करीब कारागृह में है। उसकी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। कारागृह में जो आदमी खड़ा है, वह ऐसी दुनिया नहीं बना सकता है जो कि शांत हो। इस आदमी को मुक्त करना होगा। इसकी सारी सीमाओं को तोड़ना होगा। इसे थोड़ा असीम की तरफ ले चलना होगा। स्मरण रहे अहंकार सबसे खतरनाक सीमा है, तो जो असीम होने की तरफ जाता है, उसे अहंकार भी छोड़ देना होगा। एक छोटी-सी कहानी मेरी बात को स्पष्ट कर देगी।

एक राजा का जन्मदिन था। कहते हैं उसने सारी जमीन जीत ली थी। अब उसके पास जीतने को कुछ भी नहीं बचा था। उसने अपनी राजधानी के सौ ब्राह्मणों को भोजन पर आमंत्रित किया। वे उसके राज्य के सबसे विचारशील पण्डित थे। जन्मदिन के उत्सव में उन्होंने भोजन किया और पीछे उस राजा ने कहा, "मैं तुम्हें जन्मदिन की खुशी में कुछ भेंट करना चाहता हूं। लेकिन मैं कुछ भी भेंट करूं, तुम्हारी आकांक्षा से भेंट छोटी पड़ जायगी। तुम न मालूम क्या सोचकर आये होगे कि राजा क्या भेंट करेगा। तो मैं जो भी भेंट करूंगा, हो सकता है, वह छोटी पड़ जाये इसलिए मैं तुम्हारे मन पर ही छोड़ देता हूं तुम्हारी भेंट। मेरे भवन के पीछे दूर-दूर तक श्रेष्ठतम जमीन है राज्य की। तुम्हें जितनी जमीन उसमें से चाहिए, वह ले लो। एक ही शर्त है, तुम्हें जितनी जमीन चाहिए, उतनी पहले तुम दीवाल बनाकर घेर लो, वह तुम्हारी हो जायगी। जो जितनी जमीन घेर लेगा, वह उसकी हो जायेगी। "ऐसा मौका कभी न मिला था और वह भी ब्राह्मणों को। वे ब्राह्मण तो खुशी से पागल हो उठे। उन्होंने अपने मकान बेच दिये, अपनी धन-संपत्ति बेच दी, सब बेचकर वे बड़ी दीवाल बनाने में लग गये। जो जितना उधार ले सकता था, मित्रों से मांग सकता था, सब ले आये थे। यह मौका अद्‌भुत था। जमीन मुफ्त मिलती थी। राज्य की सबसे अच्छी जमीन थी। सिर्फ रेखा खींचनी थी, दीवाल बनानी थी। बड़ी बड़ी दीवालें उन्होंने बनाकर जितनी, जो जमीन घेर सकता था, घेर ली। एक ही कीमत पर मिलती थी जमीन, सिर्फ घेर लो और जमीन मिल जायेगी। तीन महीने के बाद जब कि वह जमीन करीब-करीब घिरने के निकट पहुंच गयी थी, राजा ने घोषणा की कि मैं एक खबर और कर देता हूं जो सबसे ज्यादा जमीन घेरेगा उसे मैं राजगुरू के पद पर भी नियुक्त कर दूंगा। अब तो पागलपन और तेज हो

गया। अब जिसके पास जो भी था, कपड़े लत्ते भी बेच दिये। उन ब्राह्मणों ने अपनी लंगोटियां लगा लीं क्योंकि कपड़े लत्ते बेच के भी चार ईंट आती थीं तो थोड़ी जमीन और घिरती थी। वे करीब-करीब नंगे और फकीर हो गये। वे ज़मीन घेरने में पागल हो गये। आखिर समय पूरा हो गया। जमीन उन्होंने घेर ली। दिन आ गया और राजा वहां गया और उसने कहा कि मैं जांच कर लूं और राजगुरू का पद दे दूं। तो तुममें से जिसने ज्यादा जमीन घेरी हो, वह बताये। जो दावा करेगा उसकी जांच कर ली जायेगी। एक ब्राह्मण खड़ा हुआ। उसको देखकर बाकी ब्राह्मण हैरान रह गये। वह तो सबसे ज्यादा गरीब ब्राह्मण था। उसने एक थोड़ा-सा जमीन का टुकड़ा घेरा था, शायद सबसे कम उसी की जमीन थी और वह पागल सबसे पहले खड़ा हो गया और उसने कहा, "मेरी जमीन का निरीक्षण कर लिया जाय सबसे ज्यादा जमीन घेरी है। मैं राजगुरू के पद पर अपने को घोषित करता हूं।" राजा ने कहा, "ठहरो"! लेकिन उसने कहा, "ठहरने की कोई जरूरत नहीं, मैं घोषित करता हूं। बाद में तुम भी घोषणा कर देना। चलो जमीन देख लो! जब उसने दावा किया था तो निरीक्षण होना जरूरी था। सारे ब्राह्मण और राजा उसकी जमीन पर गये और देखकर ब्राह्मण हंसने लगे। पहले तो उसने थोड़ी-सी दीवाल बनायी थी। मालूम होता था, रात में उसने दीवाल तोड़ दी थी, रात दीवाल भी न रखी। राजा ने कहा, कहां है तुम्हारी दीवाल? तो उस ब्राह्मण ने कहा, मैंने दीवाल बनायी थी फिर मैंने सोचा, दीवाल कितनी ही बनाऊं जो भी घिरेगा वह छोटा ही होगा। फिर मैंने सोचा दीवाल गिरा दूं क्योंकि दीवाल कितनी ही बड़ी जमीन को घेरे तो भी जमीन छोटी ही होगी। घेरेगी तो छोटी होगी, घिरी होगी तो छोटी होगी। तो मैंने दीवाल गिरा दी है। मैं सबसे बड़ी जमीन का मालिक हूं। मेरी जमीन की कोई दीवाल नहीं है और इसीलिए मैं कहता हूं कि मैं राजगुरू की जगह खड़ा हूं।

राजा उसके पैर पर गिर पड़ा। उसने कहा, "मुझे पहली दफा ख्याल में आया है कि जो दीवाल गिरा देता है वह सबका हो जाता है, सबका मालिक हो जाता है। और जो दीवाल बनाता है वह कितनी ही बड़ी दीवाल बनाये तो भी जमीन छोटी ही घिर पाती है।"

मनुष्य के चित्त पर बहुत दीवालें हैं इनके कारण मनुष्य छोटा हो गया है। मनुष्य छोटा है इसलिए युद्ध है, अहंकार है। मनुष्य को बड़ा करना है तो उसकी सारी दीवालें गिरा देनी जरूरी हैं और जो लोग भी इन दीवालों को गिराने

में लगे, वे ही लोग मनुष्यता की सेवा कर रहे हैं। आप स्कूल बनायें, अस्पताल बनायें, कोई बहुत मतलब नहीं क्योंकि आप एटम भी बना रहे हैं। मनुष्यता की एक ही सेवा हो सकती है कि आप मनुष्य को दीवालों से मुक्त करें। हिन्दू की, मुसलमान की, भारतीय की, पाकिस्तानी की, काले की, गोरे की दीवालों से जो मुक्त कर रहा है हर आदमी को, वही आज के क्षणों में मनुष्यता की सेवा कर रहा है। और अगर यह सेवा सम्भव हो सके और हम एक ऐसा आदमी ला सकें जिसके मन पर कोई दीवाल न हो तो शायद मनुष्यता के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हो सकता है। आज तक मनुष्यता दुख, युद्ध और पीड़ा में रही है। या तो हम समाप्त होंगे या हमको बदलना होगा। या तो महा-युद्ध होगा, हमें समाप्त करेगा या एक महाक्रान्ति आयेगी और हमारे जीवन को बदल देगी।

दो ही तरह के लोग हैं आज जमीन पर। या तो वे लोग, जो आने वाले महायुद्ध के लाने की तैयारी में लगे हैं, साथ दे रहे हैं या वे लोग जो आने वाली महाक्रांति के लिए श्रम-रत हैं और सहयोग कर रहे हैं। मैं आपसे भी यह प्रार्थना करता हूं, महायुद्ध में साथी मत बनना। जो महाक्रांति मनुष्य के चित्त में आ सकती है, जो उसे दीवालों से मुक्त कर दे, अगर उसमें आपका सहयोग हुआ तो ही मनुष्यता की सेवा हो सकती है और एक ऐसी सेवा की आज जरूरत आ गयी है जो कभी भी न थी। लेकिन छोटी-छोटी सेवाओं से कुछ भी नहीं होगा। आज तो पूरा आकाश टूटने को आ गया है और आप छोटे-छोटे थेगड़े घर में लगायेंगे तो उससे कुछ होने को नहीं है। यह मैं नहीं कह रहा कि आप वह काम नहीं करेंगे। मैं यह कह रहा हूं कि उसको ही मनुष्यता की सेवा समझकर जो रुक जायगा, वह गलती करेगा। इन सब बातों से कुछ होने को नहीं है कि दो-चार मरीजों को दवा बंटवा दी और दस पांच बच्चों को स्कूल की शिक्षा दिला दी या कपड़े बंटवा दिये। उस महान क्रांति की दिशा में चिन्तन पैदा हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।

अन्तर्यात्रा के सूत्र

(एक चर्चा)

संकलन : क्रांति

परमात्मा को जानने के पहले स्वयं को जानना जरूरी है। और सत्य को जानने के पहले स्वयं को पहचानना जरूरी है। क्योंकि जो मेरे निकटतम हैं, अगर वही अपरिचित हैं तो जो दूरतम हैं, वह कैसे परिचित हो सकेंगे! तो इसके पहले कि किसी मंदिर में परमात्मा को खोजने जायें, इसके पहले कि किसी सत्य की तलाश में शास्त्रों में भटकें उस व्यक्ति को मत भूल जाना जो कि आप हैं। पहले और सबसे पहले और सबसे प्रथम उससे परिचित होना होगा जो कि आप हैं। लेकिन कोई स्वयं से परिचित होने को उत्सुक नहीं है। सभी लोग दूसरों से परिचित होना चाहते हैं। दूसरे से जो परिचय है, वही विज्ञान है, और स्वयं से जो परिचय है, वही धर्म है। जो स्वयं को जान लेता है, बड़े आश्चर्य की बात है, वह दूसरे को भी जान लेता है। और जो दूसरे को जानने में समय व्यतीत करता है, और भी बड़े आश्चर्य की बात है, वह दूसरे को तो जान ही नहीं पाता, धीरे-धीरे उसके स्वयं को जानने के द्वार भी बन्द हो जाते हैं। ज्ञान की पहली किरण स्वयं से प्रगट होती है और धीरे-धीरे सर्व पर फैल जाती है। ज्ञान की पहली ज्योति स्वयं में जलती है और फिर समस्त जीवन में उसका प्रकाश, उसका आलोक दिखाई पड़ने लगता है।

जो स्वयं को नहीं जानता है, उसके लिए ईश्वर मृत है चाहे वह कितनी ही पूजा करे और कितनी ही अर्चनाएं, चाहे वह मंदिर बनाये, मूर्तियां बनाये और कुछ भी करे। एक काम अगर उसने छोड़ रखा है स्वयं को जानने का,

तो जान लें कि परमात्मा से उसका कोई सम्बन्ध कभी नहीं हो सकेगा। परमात्मा से सम्बन्ध ही पहली बुनियादी आधारभूत शर्त है—स्वयं से संबंधित हो जाना। क्योंकि वही सूत्र है, वही सेतु है, वही मार्ग है, वही द्वार है, परमात्मा से संबंधित होने का। और तब जो परमात्मा प्रगट होता है वह मनुष्य द्वारा निर्मित परमात्मा की कल्पना नहीं है बल्कि वही है "जो है"। तब वह हिन्दू का परमात्मा नहीं है और मुस्लिम का परमात्मा नहीं है, जैन का और ईसाई का नहीं है तब वह बस परमात्मा है। उसका कोई रूप नहीं, नाम नहीं, उसका आदि नहीं अन्त नहीं। फिर उसकी कोई सीमा नहीं है। वैसा जो सत्य है जो हमें सब तरफ घेरे हुए है कैसे दिखाई पड़ेगा? यदि हम स्वयं को जानें बिना उसे देखने की दौड़ में पड़ गये तो वह दौड़ शुरू से ही भ्रान्त होगी। और उस भांति हम जो भी जान लेंगे, वह हमारे अज्ञान को और गहन करेगा और सघन बनायेगा।

एक अंधा आदमी अपने एक मित्र के घर मेहमान था। मित्र ने उसके स्वागत में बहुत बहुत मिष्ठान बनाये। उस अंधे को कुछ पसन्द आये। उसने पूछा यह क्या है? दूध से बनाई कोई मिठाई थी। उसके मित्रों ने कहा, दूध से बनी मिठाई है। उस अंधे आदमी ने कहा, "क्या तुम कृपा करोगे और दूध के सम्बन्ध में मुझे कुछ समझाओगे, मुझे कुछ बताओगे कि यह दूध कैसा होता है?" तो मित्रों ने वही किया जो तथाकथित ज्ञानी हमेशा से करते रहे हैं। वे उसको समझाने लग गये। एक मित्र ने कहा "दूध होता है शुद्ध सफेद बगले के पंखों की भांति।" वह अंधा आदमी बोला, "मजाक करते हैं मुझसे आप? मैं तो दूध ही नहीं समझ पा रहा। यह बगला और उसके पंखें एक और नई कठिनाई हो गई। क्या मुझे बतायेंगे कि यह बगला और उसके सफेद पंख कैसे होते हैं? तो मैं पहले बगले को समझूं, शुभ्रता को समझूं तो दूध को समझ पाऊंगा। पहली समस्या तो वहीं रह गई यह दूसरा प्रश्न खड़ा हो गया कि ये बगले के सफेद पंख कैसे होते हैं? ये बगला कैसा होता है?" मित्र अचरज में पड़ गये। एक मित्र ने तरकीब निकाली। उसने हाथ उठाया अंधे का हाथ पकड़ा। कहा कि मेरे हाथ पर अपना हाथ फिराओ और कहा कि जिस तरह मेरा हाथ मुड़ा हुआ है उसी तरह बगले की गर्दन मुड़ी हुई होती है। उस अंधे आदमी ने मुड़े हुए हाथों पर हाथ फेरा। वह उठकर नाचने लगा और बोला कि मैं समझ गया, मुड़े हुए हाथ की भांति दूध होता है। समझ गया कि दूध मुड़े हुए हाथ की भांति होता है। वे मित्र बहुत परेशान हो गये। इससे तो बेहतर था कि वे अंधे को न समझाते। क्योंकि यह जानना ही अच्छा था कि नहीं जानते हैं। यह जानना

तो और खतरनाक हो गया कि दूध मुड़े हुए हाथ की भांति होता है।

जिन्होंने स्वयं की आंखें खोलकर नहीं देखा उनके हाथों में शास्त्रों की यही गति हो जाती है, सिद्धान्तों की यही गति हो जाती है। और इसीलिये परमात्मा हमारे लिए मृत हो गया है। उसकी मृत्यु हो गई है। उसकी मृत्यु इसलिए हुई है कि हमारी आंखें बंद हैं। हम अंधे हैं। इसलिए परमात्मा को मरना पड़ा है। हमारे अंधेपन ने उसकी हत्या कर दी है। क्या हम आंखें खोलने को राजी हैं? जिनको प्रेम है जीवन से, सत्य से वे आंखें खोलने को राजी हों तो सारे जगत में परमात्मा का आलोक प्रकाशित हो सकता है। वे आंखें कैसे खुलेंगी? स्वयं के द्वार जो बन्द हैं उन्हें कैसे खोलेंगे? उसके कुछ सूत्र हैं।

पहला सूत्र है ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान चित्त की एक ऐसी दशा जहां हम स्पष्टरूप से जानते हैं कि मैं कुछ भी नहीं जान रहा हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है। ऐसे अबोध की, अज्ञान की स्पष्ट स्वीकृति पहला सूत्र है ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा। यदि वस्तुतः सम्यक और सत्य जो ज्ञान है उसे पाना है तो तथाकथित ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा, मनुष्य के मनपर ज्ञान बहुत बोझिल है। पत्थरों और पहाड़ों की भांति उसकी छाती पर ज्ञान सवार है। हम सब कुछ जानते हुए मालूम होते हैं जबकि हम कुछ भी नहीं जानते हैं। पति अपनी पत्नी को भी नहीं जानता है। पिता अपने पुत्र को भी नहीं जानता है। इतना रहस्यपूर्ण है यह जगत ! आपके द्वार पर जो पत्थर पड़ा है उसे भी आप नहीं जानते हैं। आपके आंगन में जो फूल खिलते हैं उनको भी नहीं जानते। कुछ भी तो हम नहीं जानते हैं। जीवन में इतना अज्ञात और इतना रहस्य भरा हुआ है लेकिन हमारा अहंकार कहता है कि हम कुछ जानते हैं। पिता का अहंकार कहता है कि तुम मेरे लड़के हो। मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं। लेकिन क्या पिता होने से ही कोई प्रभु को जान जाता है? पिता एक मार्ग से ज्यादा क्या है? वह प्रभु को दुनिया में जाने में द्वार बनता है, मार्ग बनता है। जैसे कोई एक चौरस्ते से होकर गुजरे और लौटते वक्त चौरस्ता कहने लगे कि—ठहरो! मैं तुम्हें भली भांति जानता हूं। क्योंकि थोड़ी देर पहले तुम मेरे पास से गुजरे थे तो इस चौरस्ते को हम क्या कहेंगे? जब एक पिता अपने बच्चे को कहता है कि मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं तो क्या वह भी वैसी ही गलती नहीं कर रहा है?

जानने के इस भ्रम में ही, जीवन का जो रहस्य है उससे हम अपरिचित रह जाते हैं। हम सभी चीजों को जानते हुए मालूम पड़ते हैं। यह जानने का भ्रम टूटना चाहिए तो ही जीवन में रहस्य का जन्म होता है और अज्ञात के प्रति

आंखें खुलनी शुरू होती हैं। ज्ञात के तट से जो मुक्त नहीं होता है, अज्ञात सागर की यात्रा उसके लिए नहीं है। परमात्मा बिलकुल अज्ञात है और हम स्वयं बिलकुल अज्ञात हैं। हमारे भीतर क्या है हम नहीं जानते। तो जो हम जानते हैं उसी को अगर पकड़े रहें तो इस अज्ञान में यात्रा नहीं हो सकेगी। हम ज्ञात से बंधे हैं।

जो जो हम जानते हैं उसी से हम बंधे हैं। किसी ने एक शास्त्र पढ़ लिया है, गीता या, कुरान या बाइबिल या कुछ और। किसी ने कुछ सुन लिया है, किसी ने कुछ अनुभव कर लिया है और वह उससे बंधा है। जो ज्ञान से बंधता है वह अतीत से बंध जाता है। क्योंकि ज्ञान हमेशा बीते हुए (Past) का हो गया है। बीत गया है। जो आपने जान लिया वह अतीत हो गया है। जो जान लिया वह गया। वह मुर्दा हो गया। वह मर गया। उस मरे हुए के साथ जो बंधा रहता है उसकी भविष्य में यात्रा कैसे हो सकेगी? वह आगे कैसे जायेगा? ज्ञान तो हमेशा बीता हुआ है। जो भी आपने जान लिया वह गया। और परमात्मा है अनजाना (Unknown) अज्ञात तो इस जाने हुए से अगर हम बंध गये तो उस अनजाने को कैसे जान सकेंगे? इसलिए ज्ञान की गठरी जो उतार देता है, वही उस अज्ञात सागर में यात्रा कर पाता है जो कि परमात्मा का है और जो कि ईश्वर का है। पहला सूत्र है ज्ञान से मुक्त हो जाना। लेकिन हम सब तो ज्ञान की तलाश में हैं। हम सब तो इस खोज में हैं कि ज्ञान कहां मिल जाये। भगवान न करे कि आपको कहीं ज्ञान मिल जाये। ज्ञान मिला कि आप वहीं बंद हो जायेंगे, वहीं ठहर जायेंगे, रुक जायेंगे तो जो ज्ञानी हो जाते हैं, वही ठहर जाते हैं और मुर्दा हो जाते हैं। पण्डित से ज्यादा मरा हुआ कोई आदमी कभी देखा है? दुनिया में जितना पांडित्य बढ़ता है उतना मुर्दापन बढ़ता है। क्यों? क्योंकि वह अपने जाने से, अपने ज्ञान से बंध जाते हैं। वह बंधन उनके चित्त को फिर उड़ाने नहीं लेने देता है। अनन्त सागर की, आकाश की, परमात्मा की उड़ान में जाने में वह असमर्थ हो जाते हैं। उनके पैर जमीन से बंध जाते हैं। ज्ञात से मुक्त से होने का साहस, ज्ञान से मुक्त होने का साहस ही किसी व्यक्ति को धार्मिक बनाता है। तो पहला सूत्र है ज्ञान के तट से अपनी जंजीरें खोल दीजिए। बड़ी घबराहट लगेगी। धन छोड़ देना बहुत आसान है। लेकिन ज्ञान छोड़ना बहुत कठिन है। इसलिए जो लोग धन छोड़कर भाग जाते हैं वे लोग भी ज्ञान नहीं छोड़ पाते। धन छोड़कर भाग जाते हैं, लेकिन उसी धन से जो किताबें खरीदते हैं उसका बस्ता बांधकर साथ ले जाते हैं। वे ज्ञान नहीं

छोड़ते। एक आदमी सन्यासी हो जाता है, घर छोड़ देता है, परिवार छोड़ देता है, पत्नी और बच्चों को छोड़ देता है, लेकिन हिन्दू होने को नहीं छोड़ता है, मुसलमान होने को नहीं छोड़ता है, जैन होने को नहीं छोड़ता है। कैसी अजीब और आश्चर्य की बात है कि अब तक जमीन पर साधु पैदा नहीं हुए। हिन्दू साधु होता है, मुसलमान साधु होता है, ईसाई साधू, होता है, यह भी क्या पागलपन की बात है। साधु होना चाहिये जमीन पर। हिन्दू, ईसाई और मुसलमान ये नाम कैसे साधु के पीछे लगे हैं? असाधु के साथ ये बीमारियां लगी रहें तो समझ में आता है लेकिन साधु के साथ इन बीमारियों को देखकर बहुत हैरानी होती है, बहुत आश्चर्य होता है। लेकिन ज्ञान जो पकड़ लिये गये हैं हिन्दू का, मुसलमान का, जैन का उसे वे छोड़ते नहीं, उसे छोड़ना क्यों नहीं चाहते? वह भी तो एक आंतरिक सम्पदा है। इसलिए वह भी एक धन है। रुपया बाहर की सम्पत्ति है। ज्ञान भीतर की सम्पत्ति है। बाहर की सम्पत्ति छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। भीतर की सम्पत्ति जो छोड़ता है, वही केवल परमात्मा से सम्बद्ध होता है। क्राइस्ट ने कहा है कि धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं। कौन? क्या वे जिनके पास लंगोटी नहीं है? अगर वे ही धन्य हैं तो क्राइस्ट ने बहुत गलत बात कही है। तो उसका मतलब यह हुआ कि वह गरीबी, दीनता और दरिद्रता के समर्थन में हैं। लेकिन नहीं, क्राइस्ट ने कहा है– "पुअर इन स्प्रिट" जो आत्मा से दरिद्र हैं। क्या मतलब? आत्मा से दरिद्र का मतलब यह कि जिन्होंने ज्ञान की सम्पदा को फेंक दिया और जिन्होंने कहा कि हमारे पास भीतर कोई सम्पदा नहीं है। हम कुछ भी नहीं जानते। हम बिल्कुल अज्ञान में हैं। हमारा कोई ज्ञान नहीं है। जिन्होंने अतीत से, बीते से, जो गया उससे अपने को बांध नहीं रखा है। धन्य हैं वे लोग जिन्होंने ज्ञान की सम्पत्ति को छोड़ दिया है, वे ही लोग, केवल वे ही थोड़े से लोग सत्य को, और परमात्मा को जान सकते हैं। तो क्या तैयारी है इस बात की आप ज्ञान को छोड़ दें? धन को छोड़ने की तैयारी करवाने वाले लोग गलत साबित हुए हैं। धन छोड़ने का कोई बड़ा सवाल नहीं है। धन बाहर है। अगर उसे छोड़ दीजिए तो इससे जो उपलब्धि होगी वह भी केवल बाहर की ही होगी। ज्ञान भीतर है। अगर उसे छोड़ा तो जो उपलब्धि होगी, वह भीतर की होगी। और स्मरण रखिये, दुनिया में केवल दो ही सिक्के हैं—धन के और ज्ञान के। और दो ही तरह के लोग हैं धन को इकट्ठा करने वाले लोग और ज्ञान को इकट्ठा करने वाले लोग।

एक बादशाह समुद्र के किनारे अपने महल में निवास करता था। एक सांझ

वह छत पर खड़ा हुआ था। सैकड़ों जहाज आते थे और जाते थे समुद्र में। उसने अपने वजीर को कहा कि देखते हो सैकड़ों जहाज आ रहे हैं और जा रहे हैं। उसके वजीर ने कहा पहले मुझे भी सैकड़ों दिखाई पड़ते थे। कुछ दिन से मुझे केवल दो ही जहाज दिखाई पड़ रहे हैं। उसके राजा ने कहा दिमाग खराब हो गया है? दो जहाज दिखाई पड़ते हैं? सैकड़ों आ रहे हैं, जा रहे हैं। उस वजीर ने कहा, हो सकता है कि मुझे गलत दिखाई पड़ता हो, लेकिन फिर भी मुझे दो ही जहाज दिखाई पड़ते हैं। एक तो धन का जहाज और एक ज्ञान का जहाज । और इन दो ही जहाजों की सारी यात्रा है। या तो कोई धन खोजने जा रहा है या कोई ज्ञान खोजने।

धन से भी अहंकार तृप्त होता है। धन है मेरे पास। धन की खोज से तृप्ति होती है कि मैं कुछ हूं, कोई हूं। भूल जाते हैं हम कि मैं अपने को नहीं जानता। धन है मेरे पास, मैं कुछ हूं। जरा किसी धनी को धक्का दें तो कहेगा कि जानते नहीं कि मैं कौन हूं? लेकिन अगर उनका धन छीन जाये तो फिर वह यह नहीं कहेगा कि जानते नहीं कि मैं कौन हूं। धन था तो वह कुछ था। एक आदमी मंत्री है तो वह कुछ है। वह मंत्री न रह जाये और जैसा कि रोज होता है, कोई मंत्री है फिर नहीं भी रह जाता। भूतपूर्व मंत्री रह जाता है। मर गया। वह मंत्री तब नहीं रह गया। जैसे कपड़े की क़ीज निकल जाये वैसा आदमी हो जाता है। बिल्कुल ढीलाढाला । उसको धक्का दो तो बिल्कुल नहीं कहता कि जानते हो—मैं कौन हूं, बल्कि वह कहेगा कि कहीं आपको चोट तो नहीं लग गई? लेकिन वह कल जब मंत्री था और आप पास से निकल जाते धक्का देकर, आपकी छाया का भी धक्का लग जाता तो कहता कि ठहरो! जानते नहीं कि मैं कौन हूं?

तो धन, पद, अनुभव यह भाव देता है कि मैं कुछ, हूं। इस "मैं कुछ हूं" के भ्रम में वह यह ख्याल ही भूल जाता है कि मैं यह भी नहीं जानता कि "मैं कौन हूं" कुछ के भ्रम में "कौन हूं।" इस बात का स्मरण नहीं रह जाता। एक और खोज है ज्ञान की । ज्ञानी को भी दम्भ पैदा हो जाता है कि "मैं कुछ हूं" और ज्ञानी धनी से कहीं ज्यादा दम्भी होता है। क्योंकि वह यह कहता है कि यह धनी तो बाहर की सम्पत्ति है। यह तो भौतिकवादी है। और हम! हम तो आध्यात्मवादी हैं, हम तो ज्ञान के खोजी हैं। धन, यह तो क्षुद्रवाद है ही लेकिन इस ज्ञान को भी क्या हो रहा है? ज्ञान से भी अहंकार मजबूत हो रहा है कि "मैं कुछ हूं।" ज्ञानियों की आंखों में देखिये, उनके आसपास ढूंढ़िये और

खोजिए वहां शांति नहीं मिलेगी, मिलेगा अहंकार। नहीं तो ज्ञानी शास्त्रार्थ करते घूमते और एक-दूसरे को हराते और पराजित करते? जहां किसी को हराने का भाव आता है वहां सिवाय अहंकार के और क्या होगा? ज्ञानी शास्त्र लिखते, और वह भी दूसरे शास्त्रों के खण्डन, निन्दा, गाली गलौज में? अगर इन ज्ञानियों के शास्त्र देखें तो बहुत हैरान हो जायेंगे। जितनी गाली गलौज की जा सकती है वह सब वहां मौजूद है। जितना जो भी मनुष्य के मन में दूसरे मनुष्य के प्रति हिंसा, घृणा और क्रोध हो सकता है वह सब वहां मौजूद है। यह क्या है? इन ज्ञानियों ने खुद भी लड़ा और दुनिया को लड़ाया और ऐसी दीवाल खड़ी कर दी जिसको तोड़ना मुश्किल हुआ जा रहा है। ये दीवालें सब अहंकार की दीवालें हैं और ये ज्ञानी अगर धन को छोड़ भी दें तो छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। अहंकार फिर भी तृप्त होता है। अहंकार अपनी जगह है। धन छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ा। धनी का अहंकार होता है। त्यागी का अहंकार होता है। और त्यागी का अहंकार धनी के अहंकार से ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि वह ज्यादा सूक्ष्म है और दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञानी का अहंकार होता है कि मैं जानता हूं। यह जो मैं जानने का भाव है यह सूक्ष्मतम भीतरी दीवार है। यह सर्व से समस्त से जुड़ने नहीं देगी। यह तोड़ देगी। अहंकार तोड़ने वाली इकाई है। वह आपको तोड़ता है सबसे आप अकेले रह जाते हैं। आप सबसे टूट जाते हैं। अहंकार तोड़ता है इसलिए अहंकार परमात्मा की तरफ ले जाने वाला नहीं होता है। अहंकार किसी भी भांति अपने को भर सकता है—स्वार्थ से, ज्ञान से, धन से। न मालूम कितने और किन रूपों से भर सकता है। अहंकार जहां है, मैं कुछ हूं यह भाव जहां है वहां सर्व के साथ सामंजस्य नहीं हो सकेगा। क्योंकि मैं कुछ हूं, यही स्वर सारे संगीत को विकृत कर देगा। क्या यह नहीं हो सकता कि यह 'मैं' चला जाये? यह हो सकता है, यह हुआ है। जमीन पर आगे भी यह होता रहेगा। यह आपके भीतर भी घटित हो सकता है।

ज्ञान के भ्रम को विसर्जित करने में मन डरता है। डर यह है कि अगर मेरा ज्ञान ही गया तो फिर मैं तो न कुछ हो गया। फिर तो मैं नामहीन हो गया लेकिन जिन्हें परमात्मा को खोजना, वे स्मरण रखें कि उन्हें न कुछ होना पड़ेगा। प्रेम के द्वार पर जो कुछ होकर जाता है उसे खाली हाथ वापस लौटना पड़ता है। प्रेम के द्वार पर जो न कुछ होकर जाता है उसे हमेशा द्वार खुले मिलते हैं और स्वागत मिलता है।

रूमी ने एक गीत गाया है। गाया है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया। द्वार खटखटाया। किसी ने पूछा कौन हो? प्रेमी ने कहा, मैं हूं तेरा प्रेमी। तुरन्त सन्नाटा हो गया। उसने बहुत बार द्वार भड़भड़ाये और कहा, बोलती क्यों नहीं हो? मैं तुम्हारा प्रेमी द्वार पर पड़ा खड़ा हूं, चिल्ला रहा हूं। आधी रात गई भीतर से किसी ने कहा लौट जाओ। यह द्वार न खुल सकेगा। क्योंकि प्रेमी के द्वार पर जो आदमी कहता है कि मैं हूं प्रेम के द्वार उसके लिए कैसे खुल सकते हैं? प्रेम के घर में दो के लिए कोई जगह नहीं है, लौट जा। वह प्रेमी लौट गया। वर्षा आई, सर्दी आयी, धूप आयी, दिन आये और गये। चांद उगे और गिरे और न मालूम कितने वर्ष बीते। और फिर एक दिन रात उस दरवाजे पर फिर दस्तक सुनी गई। और फिर उससे किसी ने पूछा कि कौन हो? बाहर से किसी ने कहा कि अब तो तू ही है। और कहते हैं द्वार खुल गये और पीछे पता चला कि द्वार तो खुले ही हुए थे। केवल 'मैं' के कारण बन्द मालूम पड़ते थे। 'मैं' नहीं था तो कोई दीवार न थी। 'मैं' परमात्मा और मनुष्य के बीच में रुकावट है। 'मैं' पर पहली और गहरी और सूक्ष्म चोट वहीं होगी जहां मैं की सबसे गहरी जड़े हैं। वह जो जानने का भाव, वह जो जानने का ख्याल है, उसे तोड़ना होगा। और सच्चाई तो यह है कि हम जानते भी कुछ नहीं हैं, तोड़ने में कठिनाई क्या है? क्या जानते हैं,? क्या जाना है? कुछ भी तो नहीं। जीवन ऐसे निकल जाता है जैसे पानी पर कोई लकीर खींचता है। जान ही क्या पाते हैं? कभी सोचा है कि क्या जान पाये हैं? कुछ भी तो नहीं लेकिन छोड़ने में भय होता है। उस भय को जो पार नहीं करता वह परमात्मा के रास्ते में यात्री नहीं हो सकता है। उस भय को पार करना होगा।

पहला सूत्र है ज्ञान के अहंकार को चोट देना। उसे बिखेरना, उसे जानना। चोट देते ही एक अद्भुत क्रान्ति भीतर मालूम होगी। जिन्दगी बिल्कुल और तरह की दिखाई पड़ने लगेगी। जिस फूल के पास से कल गुजरे थे उसी, फूल के पास से जब आज गुजरेंगे तो फूल दूसरा दिखाई पड़ेगा। क्योंकि कल आप सोचते थे कि मैं जानता हूं इस फूल को। जिस फल को आप जानते थे तो वह इस भ्रम के कारण ही न कुछ था, लेकिन आज उस फूल के पास से निकलेंगे और यह जानते हुए कि नहीं जानते हैं, तो शायद एक पल ठहर जायेंगे और उस फूल को देखेंगे तब शायद वह रहस्यपूर्ण मालूम होगा और न मालूम कितने दूर का सन्देश लाता हुआ मालूम पड़ेगा। उस फूल को भी अगर पूरी तरह शान्ति से देखेंगे तो शायद परमात्मा के किसी सौन्दर्य की झलक वहां दिखाई देगी।

लेकिन जानने वाले व्यक्ति को वह नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि वह सब जगह से अन्धे की भांति निकल जाता है। यह जो ज्ञान का दम्भ है, वह आदमी को अंधा कर देता है। यह चीजों को देखने नहीं देता है। पैर के नीचे जो दूब है परमात्मा वहां भी है, आसपास जो लोग हैं, परमात्मा वहां भी है। हवाएं हैं, आकाश है और बादल हैं और सब कुछ है और जो कुछ है सबमें वही है। लेकिन वह दिखाई तो नहीं पड़ता क्योंकि देखनेवाली आंख नहीं है। यह ज्ञान जो रोके हुए है सारे रहस्य के द्वार–पर्दे की तरह, दीवालों की तरह, तो पहली चोट तो इस ज्ञान पर ही करनी पड़ेगी और अगर ज्ञान पर आप चोट कर पाये तो एक दूसरा अभिनव क्षितिज खुलता हुआ दिखाई पड़ेगा –जो कि प्रेम का है, जो ज्ञान को छोड़ने को राजी होता है उसके लिए प्रेम के द्वार खुल जाते हैं।

तो पहला सूत्र है, ज्ञान से तोड़ना अपने को। और दूसरा सूत्र है, प्रेम से जोड़ना। जानने का भाव छोड़ दें और प्रेम करने के भाव को जान लें। जानने वाला नहीं जान पाता है और प्रेम करनेवाला जान लेता है। लेकिन हम तो कुछ ऐसे हजारों हजारों वर्षों से प्रेम के विरोध में पाले गये हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। ज्ञान पक्ष में और प्रेम के विरोध में पाले गये हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि ज्ञान के विरोध में, प्रेम से, प्रेम के जीवन में गति करें। प्रेम में चरण रखें। जब प्रेम की दिशा में चित्त प्रवाहित हो जाएगा तो परमात्मा से ज्यादा निकट कोई भी नहीं है। और अगर ज्ञान की दिशा में बुद्धि काम करती रहेगी तो परमात्मा से ज्यादा दूर कोई नहीं है। विज्ञान कभी परमात्मा को नहीं जान पायेगा क्योंकि विज्ञान की खोज किसी तथाकथित ज्ञान की ही खोज है। इसलिए विज्ञान जितना बढ़ता जाता है वह कहता है कि ईश्वर कहीं नहीं है। विज्ञान इसी तथाकथित ज्ञान की चरम परिणति है। लेकिन प्रेम तो हर कदम पर परमात्मा को पाता है। प्रेम तो हिल भी नहीं पाता बिना परमात्मा के। लेकिन प्रेम की भाषा को गणितज्ञ कैसे समझेगा? ज्ञानी कैसे समझेगा? प्रेम की भाषा उसकी समझ में बिलकुल भी नहीं आती।

एक फकीर था। वह प्रेम के गीत गाता और प्रेम की ही बातें करता था। अनेक लोग उससे कहते कि तुम परमात्मा की बातें क्यों नहीं करते। वह कहता कि परमात्मा की बातें क्या करें जो प्रेम को ही नहीं जानता उससे परमात्मा की बातें करनी नासमझी है। वह कहता कि हम तो प्रेम की ही बातें करते हैं। जो प्रेम को नहीं जानता उससे परमात्मा के लिए क्या कहें? जिन्होंने दिया नहीं देखा उनको सूरज की क्या खबर कहें। वह क्या समझें सूरज को। और जिसने दिया देखा है

उससे भी क्या सूरज की बात करें ? क्योंकि जिसने दिया देख लिया है वह सूरज भी देख लिया है । एक दिन एक पंडित पहुंचा और उसने कहा कि तुम प्रेम ही प्रेम रटे जाते हो । यह भी पता है कि प्रेम कितने प्रकार का होता है ? पंडित हमेशा प्रकार पूछता है । वह पूछता है कि कितने प्रकार का प्रेम होता है, कितने प्रकार के सत्य होते हैं, कितने प्रकार के ईश्वर होते हैं ? वह तो हर जगह यही बात पूछता है । पंडित ने उस फकीर से भी पूछा कि कितने प्रकार का प्रेम होता है । मालूम है ? वह फकीर बोला, हैरान कर दिया तुमने । प्रेम तो हम जानते हैं । प्रकार का तो हमें आज तक कोई पता नहीं चला । यह प्रकार क्या होता है ? प्रेम में और प्रकार पंडित हंसा । उसने कहा, हंसने की बारी मेरी है । अपनी झोली से उसने किताब निकाली और कहा कि यह किताब देखो । इसमें लिखा है कि प्रेम पांच प्रकार का होता है । और तुम प्रेम की बकवास कर रहे हो और प्रकार तक का पता नहीं ! क्या ख़ाक तुम्हें प्रेम का पता होगा ? अभी अ. ब. स. भी नहीं आता है तुम्हें प्रेम का । तुम्हें अभी प्रकार भी मालूम नहीं है । यह तो पहली क्लास है प्रेम की । तो पहले प्रकार सीखो, प्रेम के सम्बन्ध में शास्त्र पढ़ो, प्रेम के सिद्धान्त सीखो फिर प्रेम की बातें करो । वह फकीर बोला कि भूल हो गई भाई, हम तो प्रेम ही करने लगे । यह तो गलती हो गई । प्रकार सीखने के लिए किसी प्रेम के विद्यालय में भर्ती होना था । मैं नहीं हो पाता । यह गलती हो गई । उस पंडित ने कहा कि सुनो, मैं तुम्हें अपना शास्त्र सुनाता हूं । उसने शास्त्र सुनाया । बड़ी भारी व्याख्या की जैसी कि पंडितों की हमेशा से आदत रही है । वे भारी व्याख्यान करते रहे हैं, बिना इस बात को जाने कि जिसकी वे व्याख्या कर रहे हैं उसे वे जानते भी नहीं । उसने बड़ी बारीक व्याख्या की, बड़े सूक्ष्म तर्क उठाये । फकीर बिना कोई जवाब दिये शान्ति से सुनता रहा । पंडित ने सोचा ठीक है । फकीर प्रभावित है । क्योंकि पंडित एक ही बात जानता है । या तो विवाद करो या फिर शान्त रह जाओ विवाद मत करो । उसने देखा कि फकीर विवाद नहीं करता है तो वह मान रहा है । तब उसने कहा, सुनी पूरी बात ? समझ में आयी ? कैसा लगा ? तुम्हें कैसा लगा मेरी बात सुनकर ? उस फकीर ने कहा कि मुझे ऐसा लगा, "जैसे एक दफा फूल की बगिया में एक जौहरी सोने को कसने के पत्थर को लेकर घुस आया और माली से बोला, देखो कौन-कौन फूल सच्चे हैं, मैं अभी पता लगाता हूं । और अपने सोने के कसने के पत्थर पर फूलों को घिसघिसकर देखने लगा । और सभी फूल कच्चे साबित हुए । सभी फूल झूठे साबित हुए । तो जैसा उस माली को लगा था वैसा ही मुझे लगा । जब तुम प्रेम के प्रकार करने लगे ।"

प्रेम की भाषा अभेद की भाषा है, ज्ञान की भाषा, भेद की भाषा है। ज्ञान तोड़ता है, ज्ञान विश्लेषण करता है, प्रेम जोड़ता है। जोड़ना और तोड़ना। विज्ञान तोड़ना है। तोड़ना चला जाता है। आखिर में मिलता है परमाणु, आखिरी टुकड़ा! प्रेम धर्म जोड़ता चला जाता है, जोड़ता चला जाता है। आखिर में मिलता है परमात्मा! विज्ञान परमाणु पर पहुंचता है जो कि तोड़ता है, तोड़ता है। प्रेम परमात्मा पर पहुंचता है जो कि जोड़ता है, जोड़ता है। जोड़ने से द्वार मिलेगा परमात्मा का, तोड़ने से नहीं। इसलिए पहला सूत्र है ज्ञान को छोड़ दें। दूसरा सूत्र है प्रेम को फैलने दें और विकसित होने दें। लेकिन कैसे यह प्रेम फैलेगा और विकसित होगा? क्या जबरदस्ती किसी को जाकर प्रेम करना शुरू कर दीजिएगा? ऐसे लोग भी हैं जो जबरदस्ती भी करते हैं, सेवा करते हैं, इस आशा में कि शायद परमात्मा मिल जाये।

एक स्कूल में एक पादरी ने बच्चों को समझाया कि तुम प्रेम करो, सेवा करो। बिना एक सेवा का काम किये सोओ ही मत। दूसरे दिन उसने बच्चों से पूछा कि तुमने कोई सेवा का, प्रेम का कोई कृत्य किया? तीन बच्चों ने हाथ उठाये और कहा कि हमने किया। बड़ा खुश हुआ पादरी। तीस बच्चे थे। कम से कम तीन ने तो बात मानी। एक बच्चे को खड़ा किया और उसने पूछा कि तुमने क्या प्रेम का कृत्य किया? बच्चे ने कहा, मैंने एक बूढ़ी स्त्री को सड़क पार करवाई थी। उस पादरी ने कहा, "धन्यवाद। बहुत अच्छा किया।" दूसरे लड़के से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा कि मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को सड़क पार करवाई है। पादरी को थोड़ा-सा ख्याल हुआ कि इन दोनों ने एक ही काम किया। उसने कहा कि तुमने भी अच्छा किया। तीसरे बच्चे से पूछा कि तुमने क्या किया? उसने कहा कि मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को सड़क पार करवाई। पादरी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, क्या तुम तीनों ने एक ही सेवा का कृत्य किया? तुमको तीन बूढ़ी स्त्रियां मिल गईं जिनको तुमने सड़क पार करवाई? उन्होंने कहा, नहीं, आप गलत समझे। तीन नहीं थीं। बूढ़ी तो एक ही थी। हम तीनों ने उसी को पार करवाया। उसने पूछा, "क्या तुम तीन जनों की सहायता की जरूरत पड़ी उसके पार करने में?" उन बच्चों ने कहा, वह तो पार होना ही नहीं चाहती थी। हमने जबरदस्ती किसी तरह उसे पार किया। वह तो भागती थी। पार होना ही नहीं चाहती थी।

ये जो सेवक सारी दुनिया में सेवा करते हुए मालूम पड़ते हैं वे उसी तरह के खतरनाक लोग हैं। ये जबरदस्ती सेवा किये चले जाते हैं। ये उन बूढ़े लोगों

को सड़क पार करवा देते हैं जिनको पार करना नहीं है। दुनिया में सेवकों ने जितना उपद्रव किया है उतना और किसी ने नहीं किया। ये सोचते हैं कि इस भांति हम अपना मोक्ष तय कर रहे हैं। हमको क्या फिक्र है कि आपको सड़क पार करनी है या नहीं करनी है। हम तो अपने मोक्ष का इन्तजाम कर रहे हैं। आपको पार करना हो या नहीं करना हो, हम आपको पार करवाये देते हैं।

इस तरह कोई जबरदस्ती प्रेम और सेवा उत्पन्न नहीं होती है। प्रेम कोई कृत्य नहीं है प्रेम आपका प्राण बने, तभी सार्थक है। प्रेम आपका प्राण कैसे बनेगा? कैसे यह सम्भव होगा कि प्रेम आपसे प्रवाहित हो उठे? एक छोटी–सी बात अगर ख्याल में आ जाये तो प्रेम को प्रवाहित होने में कोई भी बाधा नहीं है। और वह छोटी–सी बात यह नहीं है कि आपके प्रेम से दूसरे को लाभ होगा, बल्कि वह छोटी-सी बात यह है कि प्रेम के अतिरिक्त आप भी आनन्द में प्रतिष्ठित नहीं हो सकेंगे। प्रेम आनन्द में प्रतिष्ठा देता है। प्रेम किसी का कल्याण नहीं है। प्रेम आपका ही आनन्द है। कभी आपने कोई ऐसा आनन्द जाना है जो प्रेम से रिक्त और शून्य रहा हो? जब भी आप आनन्द में रहे होंगे तब जरूर किसी प्रेम की दशा में ही आनन्द में रहे होंगे। लेकिन प्रेम में खुद को खोना पड़ता है, छोड़ना पड़ता है। खुद को छोड़ने की सामर्थ्य जिसमें है, उसी के भीतर उसके प्राण प्रेम से भर सकते हैं। हम अपने को जरा भी छोड़ने को राजी नहीं हैं। हम अपने को खोने को राजी नहीं हैं जबकि खोने वाला हृदय, देनेवाला हृदय और बांटने वाला हृदय ही प्रेम करने वाला हृदय है।

यह जो मांगने वाला हृदय है, यही प्रेम न करने वाला हृदय है। हम सब चौबीस घंटे मांग रहे हैं। और जब सभी लोग मांग रहे हैं तो जिन्दगी अगर घृणा से भर जाये, हिंसा से भर जाये तो आश्चर्य क्या? और अगर ईश्वर की हत्या हो जाये तो आश्चर्य कैसा? इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात है? मांगने वाला हृदय धार्मिक हृदय नहीं है। बांटने वाला, देने वाला जरूरी नहीं है कि अपना कपड़ा बांट दें और धन बांट दे। यह सवाल नहीं है। हृदय के बांटने वाले भाव को चौबीस घंटे मौके हैं, चौबीस घंटे चुनौतियां हैं। सब तरह से, सब तरफ से। सब तरफ से मौका है कि प्रेम आपके दिल में जगे और फैले। लेकिन इस प्रेम के लिए खोना पड़ेगा खुद को, देना पड़ेगा खुद को। खुद को सोये बिना कोई रास्ता नहीं है। और खोने के दो रास्ते हैं। या तो नशा करें और अपने को खो दें जैसा कि सब लोग खोते हैं। शराब पीते हैं और खुद को खो देते हैं। राम राम जपते हैं और इतनी देर जपते हैं कि दिमाग ऊब जाता है और नींद

आ जाती है और खो जाते हैं। कोई नाटक देखता है, संगीत सुनता है और मूर्छित हो जाता है, खो जाता है। अपने को भुला लेने के लिए अपने को विस्तृत करने के लिए बहुत से रास्ते हैं। एक तो यह खोना है। यह खोना हम सारे लोग जानते ही हैं। लेकिन यह खोना नहीं है, यह सोना है। यह मूर्छित होना है।

एक और खोना है प्रेम में। प्रेम में जो खोता है उसे आत्मा का स्मरण हो जाता है और नशे में जो खोता है उसे तो जो स्मरण है, वह भी भूल जाता है। प्रेम में कैसे खोयें? क्या करें? एक बात अगर ख्याल में आ जाये तो प्रेम आपसे बहेगा। और आप खो सकेंगें। वह बात यह है स्वयं को एक इकाई की तरह समझ लेना भूल है। आप पैदा हुए हैं। आपको पता है कैसे और कहां से? आप मर जायेंगे। पता है कहां और क्यों? आप जीवित हैं। पता है कैसे? आपकी स्वांस चल रही है। पता है कौन चला रहा है? क्यों चल रही है? लोग कहते हैं कि मैं स्वांस ले रहा हूं। कभी आपने सोचा है कि इससे ज्यादा झूठ और कोई बात हो सकती है कि आप कहें कि मैं स्वांस ले रहा हूं? अगर आप स्वांस ले रहे हैं, तो फिर दुनिया में कोई आपको मार ही नहीं सकेगा। वह मारे, आप स्वांस लेते चले जायें। फिर क्या होगा। फिर तो मृत्यु कभी न आ सकेगी। क्योंकि आप स्वांस लेते चले जायेंगे। मृत्यु क्या करेगी? लेकिन हम सब जानते हैं कि मृत्यु क्या करेगी? स्वांस हम लेते नहीं हैं, स्वांस चल रही है। और कहते हम यह हैं कि मैं स्वांस ले रहा हूं। जिन्दगी भर हम कहते हैं कि 'मेरा जन्म' झूठ है यह बात। मेरा जन्म क्या हो रहा है, मैं कहां हूं? उसी जन्म में कहते हैं मेरी स्वांस, मेरा जीवन'। इस 'मैं' में हम व्यर्थ ही जुड़ते चले जाते हैं जो कि कहीं भी सच्चा नहीं है, और जो कि है भी नहीं। इसको जोड़ते-जोड़ते हम मन में कल्पित कर लेते हैं फिर ऐसा लगता है कि 'मैं हूं'। और यह 'मैं हूं' मांगने लगता है। क्योंकि वह बिना मांगे जी नहीं सकता है। इकट्ठा करने लगता है धन, ज्ञान, त्याग और पूछने लगता है कि मैं मोक्ष कैसे जाऊं? स्वर्ग कैसे जाऊं? परमात्मा को कैसे पाऊं? वह सब 'मैं' की वजह से है। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि आप अहंकार छोड़ने की कोशिश करें। और यदि आपने कोशिश की तो कभी नहीं छोड़ पायेंगे, क्योंकि छोड़ने की कोशिश कौन करेगा वही 'मैं'। और हो सकता है कि एक दिन वह यह घोषणा कर दे कि 'मैं' अब बिल्कुल अहंकारी नहीं हूं। 'मैं' तो अब बिल्कुल विनम्र हो गया हूं, अहंकार तो मुझमें है ही नहीं। तो छोड़ने की कोशिश से वह नहीं

जायगा। जिस दिन जीवन को उसकी समग्रता में देखेंगे उसी दिन उस सम्यक दर्शन के प्रकाश में वह नहीं पाया जायेगा। जिस दिन दिखेगा, जन्म अज्ञात है, यात्रा अज्ञात है, मृत्यु अज्ञात है, उसी दिन वह विसर्जित हो जायेगा।

फिर उसे छोड़ना नहीं पड़ेगा, वह विलीन हो जायेगा, वह पाया नहीं जायगा। एक हंसी आयेगी और लगेगा कि मैं तो था ही नहीं और जिस दिन यह दिखायी पड़ेगा कि 'मैं' नहीं है उसी दिन दिखायी पड़ेगा वह 'जो है' उसका नाम ही परमात्मा है और उसी दिन वह बहने लगेगा जिसका नाम प्रेम है और उसी दिन सारे हृदय के द्वारों से एक प्रेम की गंगा चारो तरफ बहने लगेगी और एक प्रकाश और एक आनन्द और एक थिरक और एक संगीत स्वयं में पैदा हो जायगा। उस पुलक और संगीत का नाम धर्म है। उस पुलक, उस संगीत, उस प्रेम, उस आलोक में जो जाना चाहता है उसी का नाम परमात्मा है।

पत्थरों का परमात्मा मर गया है और अगर हम प्रेम के परमात्मा को जन्म नहीं दे सके तो फिर मनुष्य जाति को बिना परमात्मा के रहना होगा और सोच सकते हैं कि बिना परमात्मा के मनुष्य जाति का क्या होगा? जीवन में जो भी पाने जैसा है वह प्रेम है। क्यों? क्योंकि प्रेम परमात्मा की सुगन्ध है और जो प्रेम को पा लेता है, वह धीरे-धीरे सुगन्ध के मूल द्वोत को लेता है। वह परमात्मा किसी का भी नहीं है और सबका है। वह परमात्मा किसी मन्दिर और मस्जिद में कैद नहीं है और वह परमात्मा किसी मूर्ति में आबद्ध नहीं है। वह सब तरफ फैला है। उसे देखने वाली प्रेम की आंखें चाहिए। अंधे शास्त्रों को पढ़ते रहेंगे उससे कुछ भी नहीं होगा और प्रेम की आंख वाले आंख खोलकर देख लें तो सब आनन्द हो जाता है।

ये दो सूत्र मैंने कहे– ज्ञान के तट से जंजीरें तोड़ लें और प्रेम के आकाश की यात्रा में पंख खोल दें। पाल खोल दें। प्रेम की हवाएं आपको ले जायेंगी, लेकिन ये दोनों बातें तभी हो सकती हैं जब इन दोनों के बीच एक मध्य बिन्दु हो, वह मैंने आपसे अन्त में कहा। वह आपका अहंकार है। अहंकार छोड़ें तो ही ज्ञान से छुटकारा हो सकता है और अहंकार जाये तो ही प्रेम के और परमात्मा के द्वार खुल सकते हैं। और अहंकार बिलकुल भी नहीं है, उसको विदा करना है–जो है ही नहीं। उससे हाथ जोड़ लेना है; जो है ही नहीं ताकि उसे पाया जा सके 'जो है', सदा से है, सदा रहेगा। अभी है, यहीं है।

?

(प्रश्नोत्तर)

संकलन : अनूप सेठ

प्रश्न : आपकी दृष्टि में त्याग का क्या अर्थ है ?

उत्तर : साधारणतः त्याग से हमारे मन में यह ख्याल उठता है कि कुछ छोड़ना त्याग है। शब्द में यही प्रतिध्वनि है। शब्द में यही अर्थ छिपा मालूम होता है। लेकिन मैं आपसे कहूं, इस जमीन पर कोई भी आदमी कभी छोड़ने को तैयार नहीं है, जब तक कि छोड़ने के पीछे कुछ पा न लिया गया हो। अगर एक आदमी अपने हाथ में कंकड़–पत्थर भरे हुए है और हम एक झोली हीरे-जवाहरातों की उसके सामने खोल दें तो वह तत्काल कंकड़-पत्थर छोड़ देगा, क्योंकि हाथ खाली करने जरूरी हो जायेंगे। तभी हीरे-जवाहरात मुट्ठी में बांधे जा सकेंगे। हीरे-जवाहरात हाथ में आने को हों तो कंकड़-पत्थर अपने आप छूट जाते हैं, उन्हें छोड़ना भी नहीं पड़ता। वे लोग जिन्हें हीरे-जवाहरातों का कोई पता नहीं है और जो अभी भी कंकड़-पत्थर हाथ में लिये पड़े हैं, वे कहेंगे–कितना बड़ा त्यागी है ! जिन कंकड़-पत्थरों को हम समेट रहे हैं उसने उन्हें छोड़ दिया है।

लेकिन जिन्होंने हीरे-जवाहरात पा लिये हैं, वो कहेंगे कितना समझदार है। सामान्य बुद्धि की बात है, इसमें छोड़ना-वोड़ना क्या है ? उसके समक्ष हीरे-जवाहरात आ गये हैं तो उन्हें समेटने के लिये उसने कंकड़-पत्थर छोड़ दिये हैं।

लोग कहते हैं– महावीर ने धन छोड़ा, परिवार छोड़ा, महल छोड़ा, राज्य छोड़ा। लोग कहते हैं बुद्ध ने सम्पदा छोड़ी, साम्राज्य छोड़ा लेकिन मैं आपसे कहता हूं, इसके पहले कि उन्होंने कुछ छोड़ा, पाने की कोई बहुत बड़ी झलक उनके

प्राणों में भरी थी। पाना पहले हो गया, छोड़ा बाद में। छोड़ हम तभी सकते हैं जब श्रेष्ठतर की उपलब्धि शुरू हो जाती है। बिना श्रेष्ठतर की उपलब्धि के कोई कभी नहीं छोड़ता है। इसलिये त्याग बहुत ऊपर से देखने पर छोड़ना है, बहुत गहरे से देखने पर पाना है। पाना ही वहां असली बात है। लेकिन हम सारे लोगों को छोड़ना ही दिखाई पड़ता है, क्योंकि जो छोड़ा जाता है, वह स्थूल है और जो पाया जाता है वह सूक्ष्म है। वह दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिये हमें लगता है कि महावीर धन छोड़ गये पत्नी छोड़ गये। किन्तु महावीर परमात्मा को पा रहे हैं, वह हमें कभी भी दिखाई नहीं पड़ता है क्योंकि हम पत्नियों को देखने वाले लोग, मकानों की नाप-जोख करने वाले लोग, रुपये-पैसे का हिसाब रखने वाले लोग– जिसका हम हिसाब रखते हैं, वही हमें दिखाई पड़ता है कि ओह! कितना बड़ा त्याग कर रहे हैं महावीर! और महावीर वही कर रहे हैं, जो हर आदमी रोज अपने घर के कपड़े को बाहर फेंक कर करता है। लेकिन अगर कोई कचरे को प्रेम करने वाला पागल हो तो वह हमें सड़क पर कचरा फेंकते हुए देखकर हैरान हो जायेगा कि फेंक! हद कर दी इस आदमी ने! अपने घर का कचरा बाहर फेंक दिया! कितना महान त्याग किया है! और अगर वह बहुत ही ज्यादा पागल हो तो एक मूर्ति बना लेगा, मंदिर बना लेगा और पूजा करने लगेगा कि यह आदमी महा त्यागी है।

हम जो बीच पकड़े हुए हैं उसको किसी को भी छोड़ते हुए देखकर हमें हैरानी और आश्चर्य होता है, क्योंकि हरएक का मापदंड़ हमीं हैं। हम अपने से ही सबको तौलते हैं। जिन रूपयों को हम पागल की तरह पकड़े है, उनको अगर कोई छोड़ता हुआ दिखता है तो हम हैरान हो जाते हैं। उसके भीतर जो उपलब्धि हुई है वह तो दिखाई नहीं देती क्योंकि वह बहुत सूक्ष्म है और उसके लिये जो देखने वाली आंख चाहिये वह हमारे पास नहीं है। इसलिये वे लोग जिन्होंने दुनिया में सर्वाधिक पाया, हमें सर्वाधिक त्यागने वाले मालूम होते हैं। हमने उनका आधा हिस्सा ही देखा है। हमने त्याग ही देखा है, उपलब्धि नहीं। और उसका परिणाम यह हुआ है कि दुनिया एक अजीब मुसीबत में पड़ गई है। और समाज एक गहरी कठिनाई में पड़ गया है।

अनेक लोग बाहर के त्याग का अनुकरण करने में लग गये हैं। बाहर का जो था उन्होंने छोड़ दिया और भीतर का उन्हें कुछ पता नहीं है। वे त्रिशंकु की भांति लटक रहे हैं। जो था वह छोड़ दिया, जो मिलने वाला था उसकी उन्हें कोई खबर नहीं। तब उनका चित्त अत्यंत पीड़ा से भर जाये तो उसमें

आश्चर्य नहीं है। हमारा तथाकथित साधु सन्यासी ऐसी ही पीड़ा से भर जाता है। फिर न तो उसकी आंखों में शांति दिखाई पड़ती है, न उसके प्राणों में संगीत सुनाई पड़ता है बल्कि उसका सारा जीवन एक क्रोध बन जाता है। क्रोध बन जाता है इसलिये क्योंकि जो छोड़ दिया उसकी पीड़ा भीतर रह गई, और जो नहीं मिला उसका अभाव भी भीतर रह गया। वह सब तरफ से अभावग्रस्त हो गया। ऐसी दशा में वह सब तरह से क्रोध से भर जाये तो आश्चर्य नहीं है। ऋषि-मुनियों का क्रोध ऐसा ही है, आकस्मिक नहीं है। इतना क्रोध किया है मुनियों ने कि दक्षिण की एक भाषा में मुनि का अर्थ ही क्रोधी हो गया है। स्वभावतः ही जहां जीवन विफल हो जायेगा, अभाव से भर जायेगा, वहां क्रोध आयेगा ही। हाथ में जो कंकड़, पत्थर थे-वे भी छूट गये और हीरे-जवाहरात मिले नहीं, मुट्ठी खाली रह गई। संसार छूट गया और सत्य मिला नहीं। तब प्राण क्रोध से न भरेंगे तो और क्या होगा ?

इतना क्रोध आ जायेगा, इतनी जलन और इतनी आग पैदा हो जायेगी कि उसमें सब कुछ झुलस जायेगा– सारा जीवन ही मुर्झा जायेगा। इसलिये तो कभी-कभी साधारण जनों के बीच भी किन्हीं आंखों में चमक और मुस्कराहट दिखाई पड़ जाती है, किन्हीं चेहरों पर फूल की झलक दिखाई पड़ जाती है, लेकिन साधुओं के चेहरों पर नहीं। बिलकुल ही नहीं, कभी नहीं।

महावीर और बुद्ध तो अतिशय आनंद से भरे हुए थे। जरूर कुछ फर्क रहा होगा। हमने त्याग को समझने में ही भूल कर दी है। हमने त्याग के अधूरे हिस्से को देखा है। छोड़ने वाले हिस्से को देखा है और पाने वाली दिशा का हमें कोई संकेत नहीं है। इसीलिये मैं आपसे कहता हूं कि त्याग को समझना उपलब्धि छोड़ना नहीं। छोड़ना तो अपने आप हो जाता है। छोड़ने की कोशिश में मत पड़ना, अन्यथा जीवन एक रिक्तता बन जायेगा, एक रेगिस्तान बन जायेगा।

जो विराटतर को, प्रकाश को, और जीवन के गहरे अर्थ को पाने की आकांक्षा करता है और उस दिशा में चलता है और प्रयत्न करता है, वह पा लेता है। जिस दिन पाता है, उस दिन जरूर बहुत कुछ छूटता है। लेकिन वह छूटना तब एक पीड़ा नहीं होती, बल्कि वह छूटना एक निर्भार होने की दशा है। जैसे एक बोझ उतर जाता है। जैसे पके पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं तो वृक्ष को कहीं भी पीड़ा नहीं होती, लेकिन कच्चे पत्ते जिस वृक्ष से नोच लिये जाते हैं, तोड़ लिये जाते हैं, उसमें पीछे पीड़ा और घाव छूट जाता है। जिस चित्त ने आत्मा की

दिशा में कुछ पाया नहीं है और पदार्थ की दिशा में छोड़ना शुरू कर दिया है, वह अपने जीवन के वृक्ष से कच्चे पत्ते तोड़ रहा है। उसके पीछे घाव पैदा हो जायेंगे, दुख पैदा हो जायेगा, और उस दुख का बदला वह सबसे लेगा। इसीलिये साधु सन्यासी संसार को गाली देते हुए देखे जाते हैं, क्रोध से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। सबको नरक भेजने की कामना करते रहते हैं, और खुद स्वर्ग जाने के इन्तजाम में लगे रहते हैं। असल में सारी दुनिया से बदला लेना है उन घावों का जो उनके प्राणों पर बन गये हैं। अन्यथा क्या कोई साधु किसी को पापी समझ सकता है? क्या कोई साधु किसी को नरक में भेजने की योजना पर विचार कर सकता है? क्या कोई साधु नरकों में जलाये जाने वाले लोगों, कीड़े मकोड़ों, आदि की सारी परिकल्पना कर के शास्त्र लिख सकता है? हममें क्या रस हो सकता है किसी साधु चित्त को? साधु चित्त तो सभी को स्वर्ग ले जाने की आकांक्षा से भरा होना चाहिए। फिर किन्होंने नरक की सारी योजना और कष्ट ईजाद किये हैं? उन्हीं लोगों ने जिनके हाथ रिक्त हो गये हैं। इसलिये जिनके हाथ भरे हुए हैं, उनके प्रति वे क्रोध से भर गये हैं। उनसे बदला लेना चाहते हैं। इसीलिये वे संसारियों की निंदा कर रहे हैं। उन्हें नरक भेज रहे हैं। इसी तरह बदला लेने की इच्छा पूरी कर रहे हैं। इस जन्म में न ले सकेंगे तो अगले जन्म में लेने की योजना बना लेते हैं।

जिसके हृदय में आनंद की किरण उतरती है, उसका हृदय तो सबके लिये शुभकामनाओं से भर जाता है। उसके हृदय में किसी को भी बुरा देखने की संभावना नहीं रह जाती।

हमारे त्याग का आधार छोड़ना बन गया है, इसीलिये ये सारी बातें पैदा हुई हैं। और इसीलिये उन कौमों ने त्याग को छोड़ना समझा वे दयनीय हो गई, दीन हीन हो गई। उनके भीतर एक उदासी भर गई, जीवन के प्रति सारा रस खो गया। हम खुद भी दुर्भाग्य से भरी कौमों में से एक हैं। भीतर से सारा आनंद और सारा उल्लास छिन गया है। तो मैं यह नहीं कहता कि संसार को छोड़ दो, मैं यह कहता हूं कि परमात्मा को पा लो और उस पाने में ही यह घटना अनायास घटित होगी कि जो व्यर्थ है वह छूटता चला जायेगा, छोड़ना नहीं पड़ेगा। जिस चीज को छोड़ना पड़ता है उसमें दुःख है, जो छूट जाता है उसमें आनंद है।

एक छोटी-सी कहानी से शायद मेरी बात ख्याल में आ जाये। बहुत प्रीतिकर है मुझे वह कथा। बहुत पुरानी है, लेकिन बहुत अर्थपूर्ण भी।

एक पति जंगल से लौट रहा है। उसकी पत्नी उसके पीछे है। वे लकड़ियां

काट के आते हैं और पांच-सात दिन के भूखे हैं। उनका नियम है कि लकड़ियां काटकर जो मिल जाये उसी से भोजन करते हैं। पांच-सात दिन लगातार पानी गिरता रहा और वे जंगल नहीं जा सके, उन्हें उपवास करना पड़ा। थका-मांदा पति सिर पर लकड़ियां लिये चला आ रहा है। थोड़ी दूर पीछे बोझ लिये पत्नी घिसटती हुई चली आ रही है। पति ने देखा, राह के किनारे पगडंडी पर अशर्फियों से भरी एक थैली पड़ी है। स्वर्ण अशर्फियां कुछ बाहर गिर गई हैं, कुछ भीतर हैं।

उसके मन में ख्याल आया — मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली है, मैंने तो स्वर्ण का त्याग किया है। लेकिन पत्नी का क्या भरोसा ? सात दिन की भूखी है शायद मन में लालच आ जाये, लोभ आ जाये और सोचे कि उठा लें। न भी उठाये तो भी मन में भाव आने से व्यर्थ ही पाप होगा। उसने उन अशर्फियों को पास ही के एक गड्ढे में ढकले दिया और मिट्टी से ढंकने लगा। ढंक भी न पाया था कि पीछे से पत्नी आ गई। उसने पूछा, "क्या करते हो ?" झूठ नहीं बोलना है, यह भी उनका नियम था। सच बोलना पड़ा। उसने कहा कि यहां मैंने अशर्फियां पड़ी देखी, सोचा कि मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया है लेकिन कहीं तेरे मन में लोभ न आ जाये इसलिये मैं उन्हे मिट्टी से ढंक रहा था ताकि तुझे वे दिखाई न पड़ें।

पत्नी हंसने लगी। उसने कहा "मिट्टी पर मिट्टी ड़ालते हुए आपको शर्म नहीं आती ? आपको स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है !

ये दो आदमी हैं। इनमें पहला आदमी त्यागी है। उसने स्वर्ण का त्याग किया है। और जिसने त्याग किया है उसे स्वर्ण दिखाई पड़ता रहेगा। उस रास्ते से अगर कोई भोगी भी निकलता होता तो शायद वे स्वर्ण अशर्फियां उसे दिखाई भी न पड़तीं। लेकिन जिसने सोना छोड़ा है और जिसने स्वर्ण के विरोध में चारों ओर से मन में दीवार बनाई है, उसे स्वर्ण दिखाई पड़ता रहेगा।

सारी दुनिया में साधु अश्लील चित्रों के बड़े विरोध में होते हैं। आप सड़क पर निकलते हैं तो दीवारों पर लगे हुए पोस्टर आप को नहीं दिखाई पड़ते हैं। लेकिन उन साधुओं को दिखाई पड़ते हैं। बाकी उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उन्हें वही दिखाई पड़ते हैं। चित्त जिस चीज को जबरदस्ती छोड़ता है, वह बहुत जोर से आकर्षित करती है।

वह पति त्यागी था इसलिये उसे स्वर्ण दिखाई पड़ा। उस पत्नी के जीवन में एक परिपक्वता आई थी। उसने जीवन के किसी विराट सत्य को जाना था, जो स्वर्णों का स्वर्ण है। उसके समक्ष सोना मिट्टी हो गया था। जब सोना दिखाई पड़ने का कोई सवाल न था, न छोड़ने का सवाल था। जीवन में और विराट-

तर और गहरे भी मूल्य हैं, जिनके सामने स्वर्ण मिट्टी हो जाता है। फिर उसे छोड़ना नहीं पड़ता है। मिट्टी को कौन छोड़ता है? वह तो छूट जाती है। उसे कौन ढोता है? कोई नहीं ढोता। जब तक वह स्वर्ण बना है तभी तक छोड़ने का भी सवाल है। इसलिये मेरी दृष्टि में त्याग छोड़ना नहीं, पाना है। उस पाने के पीछे छोड़ना भी फलित होता है। लेकिन वह गौण है और विचारणीय भी नहीं है। उसके अत्यधिक विचार ने हमारा त्याग की सारी दृष्टि को ही गलत कर दिया है। हमारा सारा धर्म छोड़ना ही छोड़ना हो गया है। और जहां छोड़ना ही छोड़ना हो जाये वहां सब जीवन रिक्त हो जाता है। ये जो हमारी छोड़ने की दृष्टि है, उसने हमारे सारे जीवन को सूना और रिक्त कर दिया है। जीवन एक मरु-स्थल की भांति दिखाई पड़ता है। फूलों से भरी हुई एक बगिया की भांति नहीं। उसमें आनंद की कोई झलक नहीं है। सौन्दर्य का कोई रस नहीं है। अंतरवीणा के कोई स्वर नहीं हैं।

सब तोड़ देना है। सब छोड़ देना है। ये जो त्याग की दृष्टि है, वह भूल से भरी हुई है। छोड़ना नहीं है पाना है, सब पाना है, गहरे से गहरा जो जीवन में है उसे उपलब्ध करना है। और जो जितने गहरे को उपलब्ध करेगा उतना बाह्य छूटता जायेगा। जिसे पहाड़ की यात्रा करना हो उसे बोझ कम कर लेना होता है। जितनी ऊंची चोटी चढ़ना हो उतना बोझ पीछे छोड़ देना होता है। एवरेस्ट पर जो आदमी पहुंचा उसके पास कुछ भी नहीं था। सब बोझ छूट गया था। जमीन पर चलने के लिये बोझ ढोया जा सकता है। उतार उतरना हो तो और भी ज्यादा बोझ ढोया जा सकता है। लेकिन जब चढ़ाई चढ़ना हो तो बोझ कम होता जाता है। उसे जबरन कम नहीं करना पड़ता। ऊपर की चोटी पुकारने लगती है और बोझ छूटने लगता है। ऊपर के शिखर बुलाने लगते हैं और बोझ गिरने लगता है। क्योंकि ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं। शिखर का आमंत्रण जिसने स्वीकार किया है, उसका बोझ का मोह छूट ही जाता है। और इसमें कुछ टूटता नहीं, कोई पीड़ा नहीं होती। एक तरफ बोझ कम होता है, दूसरी तरफ उड़ने की क्षमता उपलब्ध होती चली जाती है। प्रत्येक कदम ज्यादा निर्भार होता चला जाता है।

जिसने परमात्मा के पर्वत पर चढ़ने की आकांक्षा की हो, उससे अंधेरी घाटियां अपने आप छूट जाती हैं। जिसने सूरज की तरफ यात्रा शुरू की हो उससे अंधेरे के रास्ते अपने आप छूट जाते हैं। जिसने सत्य की तरफ चलना चाहा हो, असत्य उससे गिरता जाता है, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिरते हैं। लेकिन जो इससे

उल्टी प्रक्रिया में लग जाता है—ज़मीन पर जीता है और बोझ छोड़ देता है, उससे कच्चे पत्ते टूटना शुरू हो जाते हैं। और इसमें इतना दुख और इतनी पीड़ा पैदा होती है कि उसका सारा जीवन एक नरक बन जाता है।

त्याग को सत्य जानना, अगर उसके भीतर आनंद की ज्योति-शिखा जलती हो। और झूठ जानना अगर उसके आसपास क्रोध की अग्नि जलती हो। त्याग को सच जानना अगर उसके भीतर से किसी असीम संगीत के स्वर सुनाई पड़ते हों। और झूठ जानना अगर उसके चारों तरफ रुदन और विसंगीत सुनाई पड़ता हो।

प्रश्न :— सेवा और प्रेम में क्या सम्बन्ध है ? क्या सेवा ही प्रेम नहीं है ?

उत्तर :— नहीं, प्रेम तो सेवा है लेकिन सेवा प्रेम नहीं है। फिर से दोहराऊं, प्रेम तो सेवा है लेकिन सेवा प्रेम नहीं है। जहां प्रेम होता है, वहां सेवा अनिवार्यतः आ जाती है लेकिन उसका पता नहीं चलता है कि मैं सेवा कर रहा हूं। और अगर यह पता हो कि मैं सेवा कर रहा हूं तो समझ लेना कि प्रेम नहीं है। सेवक को पूरे वक्त पता चलता है कि मैं सेवा कर रहा हूं। पता न चले तो वह सेवा ही न करे। वह सेवा करने के लिए सेवा करता है। सेवा उसके लिए एक कृत्य है, एक कर्त्तव्य है। सेवा उसके लिए एक साधन है जिसके द्वारा मोक्ष पाना है, ईश्वर पाना है, या कुछ और पाना है। प्रेमी सेवा करता नहीं है। सेवक सेवा करता है। प्रेम सेवा करता नहीं है, प्रेम से सेवा होती है, निकलती है। जैसे फूल से सुगन्ध निकलती है वैसे ही प्रेम से सेवा निकलती है। और अगर प्रेमी से पूछें "क्या तुम सेवा कर रहे हो ?" तो वह कहेगा "कैसी सेवा ! मैं तो जानता ही नहीं।"

एक पहाड़ी पर एक छोटी सी लड़की—होगी कोई बारह-तेरह वर्ष की, अपने छोटे भाई को कन्धे पर बांधकर पहाड़ तरफ चढ़ रही थी। पीछे से एक सन्यासी आया वह भी पहाड़ चढ़ रहा था। वह लड़की तो जा रही थी अपने गांव और वह सन्यासी तीर्थ जा रहा था। पसीने से तरबतर थी लड़की। सन्यासी भी अपना बिस्तर अपने कन्धे पर लिये हुए था। लड़की अपने छोटे-से भाई को कन्धे पर बांधे हुई थी। भरी दोपहर, सूरज ऊपर आग वर्षा रहा था। पहाड़ की सीधी चढ़ाई। पसीने से तरबतर थकी-मांदी लड़की ऊपर चढ़ रही थी। सन्यासी ने उस लड़की के पास जाकर कहा कि बेटा तुझे बहुत वजन लग रहा होगा ? लड़की ने उस सन्यासी की तरफ देखा और कहा कि स्वामी जी वजन आप लिये हुए है ! यह तो मेरा छोटा भाई है ! तराजू पर तौलें तो सन्यासी के बिस्तर में भी वजन होगा और उसके छोटे भाई में भी। लेकिन हृदय के तराजू

पर बिस्तर में वजन है और छोटे भाई में वजन नहीं है।

सेवा का वजन होता है। प्रेम का कोई वजन नहीं होता। इसलिए सेवा से अहंकार घनीभूत होता है। सेवक का अहंकार है कि मैं सेवक हूं। हम सभी उससे परिचित होंगे। लेकिन प्रेम का कोई अहंकार नहीं होता। बड़े मजे की बात है, जितना सेवक सेवा करेगा उतना ही अहंकार पुष्ट होगा कि मैं कुछ हूं। और जो प्रेम में जितना गहरा उतरेगा वह पायेगा कि जितना अहंकार विलीन होता है उतनी प्रेम में गहराई आती है। प्रेम का फूल जब खिलता है तब अहंकार अनुपस्थित होता है, और सेवा का चक्कर जब बहुत जोर से चलता है तो अहंकार घनीभूत होकर बीच में स्तम्भ की भांति खड़ा हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम तो सेवा है, लेकिन सेवा प्रेम नहीं है। प्रेम एक हार्दिक सम्बन्ध है। सेवा एक बौद्धिक सम्बन्ध है। सोच-विचार से सम्बन्ध है सेवा का। इसलिए सेवा अपमानकारक है। जिसकी हम सेवा करते हैं उसे निश्चित अपमान का अनुभव होता है। प्रेम सम्मानजनक है जिसे हम प्रेम देते हैं वह गौरवान्वित अनुभव करता है। प्रेम जिसे हम देते हैं वह गौरवान्वित होता है। क्यों? क्योंकि प्रेम देने वाले के पास कोई अहंकार नहीं होता। सेवा जब हमारी कोई करता है तो हमें संकोच लगता है। अपमान मालूम होता है। किसी से सेवा न लेनी पड़े, ऐसा मालूम होता है। क्योंकि सेवा करने वाले का अहंकार सामने खड़ा होता है, वह मजबूत होता है। सेवा तो धर्म नहीं है। यद्यपि धार्मिक व्यक्ति बहुत सेवा करते हैं। प्रेम जितना विकसित होता है उतनी ही जीवन में सेवा की भूख अपने आप लगनी शुरू होती है। कोई यह कहे कि जब प्रेम से सेवा आ जाती है तब सेवा से प्रेम भी आ सकता है, तो तर्क में और गणित में तो ऐसा दिखाई पड़ेगा कि ठीक ही कह रहे हैं। जैसे एक घर में अंधकार छाया है और हम कहें कि अगर अंधकार को निकाल दें तो प्रकाश जल जायेगा। क्योंकि प्रकाश को जलाते हैं तो अंधकार निकल जाता है तो तर्क तो बिल्कुल ठीक है। तर्क (Logic) का जहां तक सवाल है बिल्कुल ठीक है। प्रकाश को जलाते हैं तो अंधकार निकल जाता है तो अगर अंधकार को निकाल दें तो प्रकाश जल जायेगा। लेकिन ऐसा होगा नहीं। जीवन में ऐसा नहीं होता। प्रकाश जलेगा तो अंधकार तो निकल जाएगा लेकिन अंधकार निकालने गये तो खुद समाप्त हो जायेंगे। अंधकार को ही नहीं निकाल सकते, प्रकाश के जलने का तो कोई सवाल ही नहीं है ऐसा तो होगा कि प्रकाश जल

जाये, अंधकार निकल जाये, लेकिन ऐसा कभी नहीं होगा कि अंधकार को आप निकाल दें और प्रकाश जल जाये। अंधकार निकाला नहीं जाता। तो मेरा कहना है कि प्रेम का दिया जल जाये तो वह सारे तत्व जीवन में विलीन हो जाते हैं जिनके कारण सेवा के खुलने में, फैलने में बाधा है। अगर प्रेम का तत्व उपलब्ध हो जाये तो सेवा के मार्ग के सारे अवरोध, सारे पत्थर फट जाते हैं। सेवा प्रवाहित होने लगती है लेकिन कोई चाहे कि हम सेवा को प्रवाहित कर दें और इससे प्रेम का जन्म हो जाये, यह वैसे ही गलत है कि कोई सोचे कि हम अंधेरे को बाहर निकाल दें तो घर का दिया जल जाये, कभी नहीं जलेगा। लेकिन यह भूल बहुत पुरानी है और मनुष्य जाति ने जिन भूलों के कारण कष्ट उठाया है, दुनिया की उन दो–चार भूलोंमें से एक है। जिस आदमी को ख्याल पैदा होता है कि मेरे मन में प्रेम होना चाहिए, वह सोचता है कि घृणा को निकालकर बाहर कर दूं तो प्रेम आ जाएगा। यह गलत बात है। जिस आदमी के मन में ख्याल आता है कि मेरे भीतर क्षमा होनी चाहिए वह सोचता है कि क्रोध को निकालकर बाहर कर दूं तो क्षमा आ जाएगी। जिस आदमी को ख्याल होता है कि मेरे भीतर ब्रह्मचर्य आ जाये तो वह सोचता है कि सेक्स को निकालकर बाहर कर दूं तो ब्रह्मचर्य आ जाएगा। ये सब एक ही विचार सरणि की भूलें हैं, वही कि अंधकार को निकाल दें तो प्रकाश आ जायेगा। यह एकदम गलत है। एकदम गणित ही गलत है। यह कभी हो ही नहीं सकता। यही तो वजह है कि ब्रह्मचर्य लाने वाला, सेक्स को निकालते निकालते सेक्स में ही डूबता चला जाता है। और ब्रह्मचर्य कभी नहीं आता। और क्रोध को निकालनेवाला क्रोध को निकाल निकालकर और क्रोधी होता चला जाता है और क्षमा कभी नहीं आती।

एक क्रोधी सज्जन एक गांव में निवास करते थे। जैसा कि सभी गांव में सभी सज्जन निवास करते हैं। वह सज्जन भी उस गांव में निवास करते थे। बहुत क्रोधी थे। छोटी-छोटी बात पर क्रोध उनके भीतर जल जाता था। आग लग जाती थी। छोटी-छोटी बात पर आग बबूला हो उठते थे। पत्नी की हत्या कर दी। क्रोध में आकर एक बच्चे को उठाकर कुएं में फेंक दिया। गांव घबरा गया। गांव में एक सन्यासी आये तो गांव के लोगों ने कहा कि यह परम क्रोधी है सारे गांव में। क्या इनको ठीक करने का कोई उपाय नहीं है? सन्यासी ने कहा, "इसमें क्या कठिनाई है? क्रोध को छोड़ दो।" बिल्कुल सरल सी तरकीब बताई। जैसा कि सभी सन्यासी बता रहे हैं। क्रोध को छोड़ दो बात खत्म हो जाएगी। जैसे कोई बीमार कहे कि मैं बीमार हूं और डाक्टर आये और कहे कि इसमें क्या गड़बड़ी है। बीमारी छोड़ दो बात खत्म हुई। तरकीब बहुत आसान है।

लेकिन कभी किसी ने बीमारी छोड़ी है ? नहीं, आज तक दुनियां में कोई बीमारी नहीं छोड़ सका है। हां, स्वास्थ्य पैदा किया जाता है तो बीमारी छूट जाती है। स्वास्थ्य विधायक है। बीमारी तो नकारात्मक है। बीमारी छोड़ी नहीं जाती। स्वास्थ्य पैदा किया जाये या स्वास्थ्य पैदा करने की कोशिश की जाये तो बीमारी नष्ट होती है। अपने आप विलीन हो जाती है। लेकिन उन सन्यासी ने कहा, क्रोध को छोड़ दो। वह आदमी तो पक्का क्रोधी था। उसने कहा कि मैं कसम खाता हूं कि क्रोध को छोड़कर रहूंगा। अक्सर क्रोध में क्रोधी आदमी ऐसे ही कसम खा लेते हैं। हालांकि उन्हें यह पता नहीं होता कि यह क्रोध का ही हिस्सा है। यह जो कसम है कि मैं क्रोध छोड़कर रहूंगा चाहे जान रहे या जाये, उसी क्रोध पर खड़ी है। बातें वह वही बोल रहा था जो कल तक बोलता था। किसी से झगड़ा होता था तो वह कहता था कि मेरी जान रहेगी या तुम्हारी। आज वह कह रहा था कि मैं रहूंगा या क्रोध।

सन्यासी ने जब कहा कि क्रोध को छोड़ दो, क्रोध बुरी बात है। तो वह खड़ा हो गया और उसने कहा मैं क्रोध छोड़कर रहूंगा, चाहे जान रहे या जाये। यह वही का वही क्रोध था फर्क थोड़े ही था। लेकिन सन्यासी खुश हुए कि बड़ा संकल्पवान आदमी है। ऐसे मूढ़ अक्सर संकल्पवान समझ लिये जाते हैं। सन्यासी ने कहा कि अगर तू ने ऐसा संकल्प ही कर लिया है तो सन्यासी हो जा। वह आदमी सन्यासी हो गया। क्रोधी आदमी कुछ भी कर सकता है, सन्यासी भी हो सकता है। क्रोधी आदमी से कुछ भी हो सकता है। जो हत्या कर सकता है अपनी पत्नी की, वह सन्यासी नहीं हो सकता क्या ? यह तो बिलकुल आसान बात है। उसने कपड़े–लत्ते वहीं उतारकर फेंक दिये। वह गया बाजार में। कपड़े रंगकर आ गया और सन्यासी हो गया। वैसे किसी को भी सन्यासी होना हो तो कपड़े रंग ले और बदल दे तो सन्यासी हो जायेगा ऐसे ही वह सन्यासी हो गया। गांव के लोगों ने कहा कि यह तो परमतपस्वी मालूम होता है, कितनी शीघ्रता से कितने संकल्प से उसमें परिवर्तन हो गया है। बुद्धिमान आदमी में परिवर्तन धीरे धीरे होता है। मूढ़ आदमियों में एकदम से हो जाता है। उस मुनि ने कहा "मैंने बहुत से लोग देखे लेकिन तेरे जैसा खोजी मैंने नहीं देखा कि दो मिनट के भीतर तुझमें परिवर्तन हो गया। हम तेरा नाम मुनि शांतिनाथ रख देते हैं।" मुनि शांतिनाथ जो अभी ढीले से बैठे थे, वह और अकड़कर सीधे हो गये और रीढ़ ऊंची कर ली। वह जो कि परम क्रोधी था अब बिलकुल आंख बन्द करके बैठने लगा। क्रोध ऐसे तो कहीं विलीन हो नहीं जाएगा। वह भीतर-भीतर घूमता रहा।

पहले निकल जाता था तो थोड़ा बहुत छुटकारा भी होता था। अब वह भी न रहा। अब निकास का भी कोई द्वार नहीं रहा। भीतर भीतर उसका क्रोध घूमने लगा। क्रोध में वह बड़ी तेजी से भाषण करने लगा। क्रोध में कोई भी तेजी से भाषण कर सकता है। क्रोध में वह बड़े ऊंचे-ऊंचे सिद्धान्तों की बात बोलने लगा, खण्डन-मण्डन करने लगा, शास्त्रार्थ करने लगा। हालांकि यह सब क्रोध के लक्षण हैं। दस साल बीत गये। वह क्रोधी व्यक्ति जो कि मुनि शांतिनाथ हो गया था। बहुत प्रसिद्ध हो गया। प्रसिद्ध के लिये जो भी गुण चाहिए सभी उनमें थे। वह उनमें कभी नहीं थी। नेता होने के लिए, गुरू होने के लिए, क्रोधी होना बहुत जरूरी है। नहीं तो हो ही नहीं सकते। एक बड़ी राजधानी में वे आये। वहां उनके बचपन के एक साथी रहते थे। उन्हें तो हैरानी थी कि उनका वह परम मित्र सन्यासी कैसे हो गया! और सुनते हैं—मुनि शांतिनाथ कहलाने लगा। अब तो उन्होंने लंगोटी और कपड़े भी छोड़ दिये थे। अब वह नग्न रहने लगे थे। जब क्रोधी आदमी कोई काम करता है तो अति (Extreem) तक करता है। बीच में कभी नहीं रुकता। उन्होंने लंगोट आदि सब छोड़ दिये। अब वह बिलकुल नग्न परम दिगम्बर हो गये थे। वह मित्र उनका मिलने गया। मित्र तो उनको पहचान गया लेकिन जो दस साल तक सन्यासी रह चुका था। वह कैसे मित्र को पहचान सकता था? सन्यासी का कोई मित्र होता ही नहीं। सन्यासी का कोई लाग—लगाव होता है? यद्यपि वह पहचान तो गये लेकिन बोले नहीं, क्योंकि मित्रता दिखाना, और वह भी एक सामान्य आदमी से, अशोभन है। बड़े आदमी, छोटे आदमी से कोई मित्रता कभी नहीं रखते। उनके आप शिष्य हो सकते हैं। वे आपके गुरू हो सकते हैं। मित्र आप उनके कभी नहीं हो सकते हैं। वह बड़ा आदमी हो गया था। महान् त्यागी था। मित्र बैठा हुआ था तो वह उसकी तरफ देख भी नहीं रहा था। उसके ढंग से मित्र समझ तो गया कि मुझे पहचान तो लिया है बार-बार किनारे की आंख से देख लेता है लेकिन पहचानना नहीं चाहता है। जब कोई आदमी बड़ा आदमी हो जाता है तो छोटे आदमियों को सड़क पर पहचानना पसन्द नहीं करता, क्योंकि उनके पहचानने से यह पता चलता है कि तुम भी कभी छोटे थे तभी तो उनसे कभी दोस्ती रही होगी, इसलिए कोई नहीं पहचानता। कोई बड़ा आदमी किसी छोटे आदमी को नहीं पहचानता है। वह भी नहीं पहचाना। इसमें कोई कसूर की बात तो नहीं थी। इसमें उस मित्र को नाराज होने की कोई जरूरत भी नहीं थी। मित्र ने पूछा कि महानुभाव! कृपया मैं पूछ सकता हूं कि आपका नाम क्या है? उसने कहा "मेरा नाम? क्या अखबार नहीं पढ़ते हो? आंखें बन्द

करके जिन्दा रहते हो ? सारी दुनिया मेरा नाम ले रही है–मुनि शांतिनाथ।" मित्र समझ तो गया कि यह आदमी वहीं का वहीं है। थोड़ी देर सन्यासी कुछ ब्रह्मचर्चा करते रहे। आत्मज्ञान, उपनिषद् की बातें बताते रहे फिर उस मित्र ने पूछा कि महानुभाव क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका नाम क्या है ? उन्होंने बड़े गुस्से से उसे देखा। बोले, "हद हो गई। मैंने अभी तुझ को क्या बताया है कि मेरा नाम मुनि शांतिनाथ है। भूल गया इतनी जल्दी ! बात आई गई। फिर ब्रह्मचर्चा चलने लगी। कोई दो मिनट बीते होंगे। उस मित्र ने फिर पूछा "महानुभाव। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका नाम क्या है ? अब तो वह डंडा उठा लिये। उन्होंने कहा, "कह तो दिया कि मेरा नाम मुनि शांतिनाथ है, और अगर अबकी दफा पूछा तो वह मजा चखाऊंगा कि जीवन भर याद रहेगा।" उस मित्र ने कहा, "मैं पहचान गया कि आप वही हैं जो अपने बचपन में मेरे साथ रहे। कोई फर्क आप में नहीं हुआ है। इसी बात को जानने के लिए मुझे तीन दफा नाम पूछकर आपको कष्ट देना पड़ा।"

क्रोध वहीं का वहीं है। ऐसे कहीं कोई क्रोध नहीं छोड़ता है। सभी साधु-सन्यासी अभिशाप देते रहे, शाप देते रहे। काहे के लिए ऋषि-मुनि अभिशाप देते रहे कि जाओ कई जन्म भटको, नर्क में जाओ। ये कैसे लोग रहे होंगे ? इनको ऋषि-मुनि कौन कहता रहा ? वे परम क्रोधी लोग रहे होंगे। क्रोध से ही उनका सन्यास निकला होगा। वह क्रोध भीतर मजबूत रहा होगा। छोटी-छोटी बात पर अभिशाप ! ऋषि से और अभिशाप ! मुनि से और अभिशाप ! यह तो अकल्पनीय है। इसकी तो कोई कल्पना नहीं हो सकती। लेकिन सारी कथाएं, सारे पुराण इन्हीं से भरे हैं। क्रोध ऐसे नहीं जाता है, न जा सकता है। जीवन में कोई भी निषेधात्मक भाव (Negative Emation) कभी सीधे नहीं हटाया जा सकता। घृणा नहीं छोड़ी जा सकती। क्रोध नहीं छोड़ा जा सकता। हां, प्रेम जगाया जा सकता है। और प्रेम जाग जाये तो क्रोध विलीन हो जाता है और घृणा छूट जाती है। वैसे ही जैसे दिया जल जाये तो अंधकार चला जाता है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि क्रोध छोड़ो। मैं नहीं कहता कि घृणा छोड़ो। मैं नहीं कहता कि कठोरता छोड़ो। मैं नहीं कहता कि काम (Sex) छोड़ो। मैं नहीं कहता कि लोभ छोड़ो। छोड़ने की भाषा ही गलत है। मैं कहता हूं प्रेम को उपलब्ध करो, प्रकाश को उपलब्ध करो। उसकी उपलब्धि इनका छोड़ना अपने आप बन जाएगी। उसे पा लेना इनका छूट जाना है। इसलिए जो धर्म छोड़ना सिखाता है वह धर्म ही नहीं है। जो धर्म पाना सिखाता है, उपलब्ध करना

विधायक रूप से कुछ होना सिखाता है, वही सच्चा धर्म है। निषेधात्मक धर्म का ईश्वर मर गया जो कहता था कि क्रोध छोड़ो, हिंसा छोड़ो। विधायक धर्म के ईश्वर को जन्म देने का यदि इरादा है तो कहना होगा कि प्रेम को फैलाओ, प्रेम को विकसित करो, प्रकाश को जगाओ। अगर संसार में कभी भी कोई धर्म का राज्य होगा तो विधायक खोज से होगा, निषेध से नहीं। इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म त्याग नहीं है। धर्म है उपलब्धि। धर्म छोड़ना नहीं है, धर्म है पाना। धर्म संसार का विरोध नहीं, धर्म है ईश्वर को पा लेना। यह जो विरोध की भाषा है छोड़ने की, त्यागने की, गलत है। इसलिए मैंने कहा, प्रेम तो सेवा है, सेवा प्रेम नहीं।

प्रश्नः—यह बात सुन कर कि ईश्वर मर गया है। हमें बहुत दुख हुआ।

उत्तरः—आपको दुख हुआ इस बात से मुझे बहुत खुशी हुई, है क्योंकि मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिनसे मैंने कहा, ईश्वर मर गया है तो उन्होंने कहा मर जाने दो। हर्जा क्या है? मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिनसे मैंने कहा, "ईश्वर मर गया है।" तो उन्होंने कहा, "ईश्वर—लाल ठेकेदार? अच्छा आदमी था बेचारा, कैसे मर गया? 'मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिनसे मैंने कहा, ईश्वर मर गया है तो उन्होंने कहा, "उससे कहा किसने था कि वह जिन्दा रहे?" जब मुझे यह पता चला कि आपमें से बहुत से मित्रों को दुख पहुंचा है तो मुझे खुशी हुई। ईश्वर के मरने की बात से जिन्हें दुख पहुंचा है, उन्हें ईश्वर से कोई न कोई लगाव है, कोई न कोई प्रेम है। वे ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ सोचते और विचारते हैं। अगर दुनिया में कुछ लोगों को इस बात से दुख होता है कि ईश्वर मर गया है तो शायद ईश्वर पुनरुज्जीवित हो सके। लेकिन अगर लोगों ने उपेक्षा ग्रहण कर ली तो फिर ईश्वर के पुनरुज्जीवित होने की कोई सम्भावना नहीं। नास्तिक कभी भी ईश्वर की हत्या नहीं कर सकता है, लेकिन जिनके मन में उपेक्षा है, वे ईश्वर की हत्या कर सकते है। अगर सारी दुनिया उपेक्षा से भर जाये तो ईश्वर जिन्दा भी रहे तो उसके जिन्दा होने का अर्थ क्या होगा? इसलिए मैं स्वागत करता हूं अगर किसी को इस बात से दुख पहुंचा हो कि ईश्वर मर—गया है। यह बहुत खुशी की बात है। लेकिन इस दुख में कहीं ऐसा न हो कि हम मरे—मराये ईश्वर को अपना दुख भुलाने के लिए पूजते चले जायें। कहीं ऐसा न हो कि मरे—मराये ईश्वर के मन्दिर की ही हम पूजा किये चले जायें, क्योंकि हमें यह जानकर बहुत दुख होता है कि ईश्वर मर

गया है इसलिए मानते चले जायें कि अभी जिन्दा है। यह खतरनाक बात होगी। अगर ईश्वर मर गया है तो जिन्हें दुख हो रहा हो, वे चाहे रोयें, चाहे आंसू बहायें लेकिन कृपा करें, उस ईश्वर को जाकर दफना दें। पिता मर जाता है, मां मर जाती है तो हम क्या करते हैं? रोते हैं, लेकिन दफना देते हैं। मुर्दे को घर में रखना मरने से भी ज्यादा खतरनाक बात हो जायेगी। किसी का मर जाना उतना खतरनाक नहीं, लेकिन लाश को घर में रख लेना बहुत खतरनाक है। क्योंकि जो जिन्दा हैं उनके मरने की भी सम्भावना पैदा हो जायगी। ईश्वर तो मर गया, लेकिन मनुष्य के मन्दिरों में उसकी पूजा जारी है। इससे यह खतरा है कि कहीं मनुष्य भी न मर जाये। क्योंकि मुर्दे को घर में रखना बहुत खतरनाक है। यह तो मैंने कहा कि ईश्वर मर गया है, अब डर यह है कि कहीं आदमी भी न मर जाये। इसके पहले कि आदमी मरे, इस मरे हुई ईश्वर को दफना दें। और जब तक इसे न दफनाया जायगा तब तक उस ईश्वर को नहीं पाया जा सकता है जो कि न कभी जन्मता है और न कभी मरता है। यह मनुष्य निर्मित ईश्वर है जो मरा है। यह मनुष्य निर्मित धर्म हैं जो बनते हैं और मिट जाते हैं। ये मनुष्य निर्मित ग्रन्थ हैं जो लिखे जाते हैं और भूल जाते हैं। यह मनुष्य निर्मित मूर्तियां हैं, जो गढ़ी जाती हैं और बिखर जाती हैं। मनुष्य जो भी बनायेगा वह शाश्वत नहीं होगा। बनाया हुआ कुछ भी शाश्वत नहीं हो सकता है, क्योंकि जो बनाया गया है वह मिटने का बीज अपने में लिये होता है। क्या आपका ईश्वर आपका बनाया हुआ है? अगर है तो चाहे उसे कितना ही छाती से संजोकर रखो, वह मरेगा। अगर आपका ईश्वर आपका बनाया हुआ हो तो आप सब मिलकर भी कोशिश करें कि वह मर जाये तो भी नहीं मर सकता है। लेकिन हमारा ईश्वर तो हमारा बनाया हुआ है। इसीलिए तो इतना कमजोर, इतना नपुंसक (Impotent) हैं। कहते तो हम हैं कि ईश्वर है सर्व शक्तिमान। लेकिन उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के मन्दिर के बाहर ही एक सिपाही को बन्दूक लेकर खड़ा कर देते हैं कि तुम इसकी रक्षा करो। यह बड़ा अद्भुत सर्व शक्तिमान ईश्वर है! एक सिपाही इनकी रक्षा के लिए बाहर खड़ा है! यह हमारा बनाया हुआ ईश्वर है जिसको सिपाही की जरूरत है। जिसके चोरी हो जाने का भय है जिसे दुश्मनों के द्वारा फोड़े जाने का खतरा है। फिर यह ईश्वर बड़ा कमजोर है। हम इसके सामने प्रार्थनाएं भी करते रहते हैं। कोई प्रार्थना कभी भी नहीं सुनी जाती है। पिछले तीस–चालीस साल से सारी मनुष्य जाति प्रार्थना कर रही है कि अब युद्ध न हो लेकिन दो महायुद्ध हो गये और दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हत्या भी हो गई। एकाध आदमी मरने की

बात होती तो कहते नहीं सुनी ईश्वर ने। लेकिन हर दस-पांच वर्षों में युध्द हों और करोड़ों लोग मर जायें और करोड़ों हृदय प्रार्थना कर रहे हैं, और न सुनें तो या तो ईश्वर बहरा है या जिस ईश्वर के सामने हम प्रार्थनाएं कर रहे है वह जिन्दा ही नहीं है। बहरा ईश्वर भी सुन लेता है। कितना हम चिल्लाते हैं, कितना रोते हैं, गिड़गिड़ाते हैं लेकिन अब ईश्वर है ही नहीं। हम अपनी ही किसी कल्पित प्रतिमा के सामने खड़े होकर चिल्ला रहे हैं। लेकिन अगर कोई वहम बहुत दिनों तक पोसा जाये तो हम भूल जाते हैं कि यह पागलपन है। घरों में छोटे-छोटे बच्चे गुड्डे-गुड्डी का विवाह रचाते हैं। हम हंसते हैं कि बच्चे हैं। और हम रामचन्द्र जी का विवाह रचवाते हैं तो समझते हैं कि हम धार्मिक हैं। उम्र बढ़ने से किसी का बचपना नहीं मिटता है। उम्र बढ़ जाती है, बच्चे, बच्चे ही बने रहते हैं। दो तरह के बच्चे होते हैं—एक छोटे बच्चे और एक बड़े बच्चे। छोटे बच्चे गुड्डे-गुड्डियों को कपड़े पहनाते हैं। मिठाई खिलाते हैं तो हम हंसते हैं कि बच्चे हैं, बड़े हो जायेंगे तो अपने आप छोड़ देंगे। और हम रोज भगवान की मूर्ति को भोग लगाते हैं और न मालूम क्या-क्या पागलपन करते हैं और सोचते हैं कि हम धार्मिक हैं! सब मूर्खतापूर्ण हैं, जड़तापूर्ण हैं। बच्चों को माफ किया जा सकता है। बूढ़ों को माफ नहीं किया जा सकता। बच्चे आखिर बच्चे हैं लेकिन बूढ़े क्या हैं? और बच्चे तो गुड्डे-गुड्डी के साथ थोड़ी देर खेल खेलते हैं और फिर भूल भी जाते हैं, एक कोने में पटक देते हैं। अपना दूसरा काम करने लगते हैं। लेकिन ये बड़े? जिन भगवान की ये गुड्डे-गुड्डियों-सी मूर्ति बना लेते हैं उसके बचाव के लिये मौका आ जाये तो तलवार निकाल लेते हैं, हत्या कर देते हैं, लाखों लोगों को मार डालते हैं, क्योंकि इनके भगवान को चोट पहुंच गई। इनके भगवान का अन्त कर दिया गया। इनके भगवान को गाली दे दी गई। खून करते हैं, हत्यायें करते हैं, आग लगाते हैं और न मालूम क्या-क्या करते हैं। क्या नहीं किया धार्मिक लोगों ने जमीन पर! इन पूजा करने वाले लोगों ने मंदिर और मस्जिद बनाने वाले लोगों ने क्या नहीं नहीं किया है जिसको पाप न कहा जा सके! सब तरह के पाप किये हैं। एक एक आदमी ने अकेले अकेले कोई बड़ा पाप नहीं किया है। लेकिन समूहों, संगठनों और धर्मों के नाम पर ऐसे ऐसे पाप किये गये हैं कि उनको अगर ख्याल में भी ले आयें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यदि दुनिया में इतने धर्म नहीं होते तो शायद दुनिया ज्यादा धार्मिक होती। इनसे इतना अधर्म आया है जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन हम कहते हैं कि हम धार्मिक हैं—ऐसे लोग जिनका मस्तिष्क बिल्कुल बचकाना

है। यह हमारा बनाया हुआ भगवान किसी भी काम का साबित नहीं हुआ है, हो भी नहीं सकता। आदमी कमजोर है। वह आदमी जो भगवान बनायेगा वह उससे भी ज्यादा कमजोर होगा। श्रष्टा से उसकी सृष्टि कभी ज्यादा ताकत की नहीं होती है। मैं जो बनाऊंगा वह मुझसे कमजोर होगा। आप जो बनायेंगे वह आपसे कमजोर होगा। बनाने वालों से जो बनायी गई चीज है, वह बड़ी नहीं हो सकती, ताकतवर नहीं हो सकती। यह भगवान तो हमारा बनाया हुआ है, हमसे ज्यादा ताकतवर नहीं हो सकता। इसकी सुरक्षा के लिए भी हमारी जरूरत पड़ती है और इसी के सामने हम हाथ जोड़े खड़े हैं, यह क्या पागलपन है? खुद मूर्तियां गढ़ लेते हैं और उनको प्रतिष्ठा देते हैं, उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। खुद ही प्रार्थनाएं बना लेते हैं और उनको करने लगते हैं।

यह भगवान मर गया है। न मरा हो तो मर जाना चाहिए। और जिनके मन में भी धर्म के प्रति थोड़ा प्रेम है, उन्हें इस भगवान के मर जाने में सहायता और सहयोग देना चाहिए। यह बिदा हो जाएगा। स्मरण रखिये अभी मनुष्य का भगवान से युक्त नहीं हो सकता जब तक कि वह सूठे भगवान से मुक्त नहीं हो जाता लेकिन अगर झूठे भगवान बिदा हो जायें तो एक खालीपन पैदा होगा और उस खालीपन से एक प्यास पैदा होगी और हम भगवान की खोज में संलग्न होंगे। लेकिन यह जो पूरक भगवान है (Substitute God) यह प्यास को पैदा नहीं होने देगा। प्यास पैदा नहीं होने देता है, यह पूर्ति कर देता है। यदि किसी आदमी को रुपये की तलाश हो और हम नकली सिक्के हाथ में दे दें तो वह निश्चिन्त हो जाएगा और सो जायेगा। उसकी खोज बन्द हो जाएगी। वह तिजोरी में ताला लगा देगा और प्रसन्न हो घूमने लगेगा कि सिक्के मेरे पास आ गये, बात खत्म हो गई। अब वह उन सिक्कों की खोज भी बन्द कर देंगे। अब उसका अन्वेषण भी बन्द हो जाएगा। अब उसका श्रम भी बन्द हो जाएगा। यह जो हमारे हाथ में एक परिपूरक भगवान हमें मिल गया है उससे हमारी असली भगवान की खोज बन्द हो गई है।

एक रात दो साधू एक पहाड़ी स्थान से निकले एक साधु वृद्ध था वह अपने कन्धे पर झोली लटकाये हुए था। पीछे उसका युवा शिष्य था उसके साथ में। बार बार वह साधु कहने लगा, जंगल है, अंधेरी रात है। अपने शिष्य से पूछने लगा यहां कोई खतरा तो नहीं है? उसके शिष्य ने कहा, सन्यासी को और खतरा! रात अधिक हो तो हो, जंगल हो तो हो, खतरा क्या है? लेकिन

थोड़ी बहुत दूर चलकर वह वृद्ध साधु फिर पूछा कि रात बड़ी अंधेरी है, अमावस है। रास्ता खतरनाक तो नहीं है? पूछा था किसी को ? गांव में पता लगाया था ? उसे युवा साधु को हैरानी हुई कि इस भांति तो इस साधु ने कभी नहीं पूछा। फिर वे एक कुएं के पास ठहरे। उस साधु ने कहा, मैं थोड़ा हाथ मुंह धो लूं। झोला अपने युवक शिष्य को दिया और कहा कि उसे संभालकर रखना। साधु हाथ मुंह धोने गया। युवक ने उस झोले के अन्दर देखा कि एक सोने की ईंट पड़ी थी। उसे शक तो पहले ही हो गया था कि साधु को खतरा है, तो जरूर झोले में कुछ होना चाहिए नहीं तो खतरा क्या होगा? उसने वह ईंट निकाली। साधु अपने काम में लगा हुआ था। उसने ईंट फेंक दी गड्ढे में और उसकी जगह एक पत्थर उठाकर उसकी झोली में रख दिया। एक पूरक ईंट रख दी। वह साधु हाथ-मुंह धोकर आया। उसने अपना झोला जल्दी से कंधे पर टांगा और देखा कि वजन है और मजे से चलने लगा। फिर थोड़ी देर बाद उसने पूछा कि जब तो रात और गहरी हो गई। क्या कोई गांव करीब नहीं है कि हम रुक जायें? खतरा तो नहीं है? उस युवक ने कहा कि कोई खतरा नहीं है, बिल्कुल चले चलिए। उस साधु ने कई बार पूछा था लेकिन उस युवक ने यह नहीं कहा था कि कोई खतरा नहीं है। साधु को शक हुआ। उसने टटोलकर अपनी ईंट देखी। देखा कि ईंट अपनी जगह है। फिर उसने थोड़ी देर में कहा कि मुझे बहुत भय लगता है। उस युवक ने कहा कि बिल्कुल निर्भय हो जाइए, आपके भय को मैं पीछे गड्ढे में फेंक आया हूं। उसने घबराकर अपनी झोली खोली। देखा तो उसमें पत्थर की ईंट रखी हुई है। युवा शिष्य ने कहा निर्भय हो जाइए और मजे से चलिये, मैं भय को पीछे फेंक आया हूं। वह साधु बोला, हद हो गई। हद हो गई! मैं तो इसी ईंट को संभाले हुए चल रहा था, प्राणों से लगाये हुए चले जा रहा था। अगर कोई अभी हमला कर देता मुझपर और ईंट को छीनने की कोशिश करता तो शायद खून-खराबी हो जाती और मैं अपनी जान दे देता। लेकिन इस ईंट को बचाता।

हमारे भगवान भी इसी तरह की पत्थर की ईंट हैं जिसको आप संभाले चले जा रहे हैं और खून-खराबी किये जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं और झोली खोलकर नहीं देखते कि सोने की ईंट बहुत पहले विलीन हो गई है और उसकी जगह पत्थर की ईंट आप ढोये जा रहे हैं। यह भगवान मर गया है। मरे हुए भगवान को ढोते रहिए, ढोते रहिए। आपकी मर्जी। कुछ लोगों को बोझ ढोना अच्छा लगता है तो कोई क्या करे। लेकिन यह बहुत मंहगा पड़

रहा है। सारी मनुष्य जाति मरी जा रही है, पत्थर के नीचे दबी जा रही है। थोड़ा देखिए खोलकर अपने भगवान को कि वह है या नहीं ? इसे छोड़ना नहीं पड़ेगा। इसे खोलकर देखते ही आप निर्भय हो जायेंगे कि यह पत्थर की ईंट है। भय विलीन हो जायगी और इसके मरने से दुख भी नहीं होगा। दुख इसलिए हो रहा है कि आप सोच रहे हैं कि ईंट सोने की है। इसलिए अगर आपको कोई यह खबर दे दे कि वह ईंट खो गई तो आप परेशान होकर कहेंगे कि ईंट के खोने से हमें बड़ा दुख हो रहा है ! लेकिन अगर आपको पता चल जाये कि ईंट पत्थर की थी तो आप कहेंगे कि बोझ उतर गया। कंधे से बोझ उतर गया तो बहुत आराम मिल रहा है। अब मैं कहता हूं कि ईश्वर मर गया, तो यह उन लोगों के हृदय के लिए खुशी का समाचार है जिन्हें ईश्वर से जरा भी प्रेम है।

प्रश्न : आप सब धर्मों और महापुरुषों के विरोध में है तो क्या वे सब झूठे हैं ?

उत्तर : मैं निश्चय ही सब धर्मों के विरोध में हूं क्योंकि मैं धर्म के पक्ष में हूं। जिसे धर्म के पक्ष में होना है उसे धर्मों के विरोध में होना पड़ेगा। धर्म एक है। हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, और जैन, इसीलिए धर्म नहीं कह सकते हैं। जहां अनेकता है वहां धर्म नहीं हो सकता है। इसीलिए धर्मों (Religions) के मैं विरोध में हूं, क्योंकि धर्म(Religion) के मैं पक्ष में हूं।

धर्म, जीवन के भीतर जो चैतन्य है, उसका विज्ञान है। पदार्थ का विज्ञान एक है। क्या केमिस्ट्री हिन्दुओं की अलग होती है और मुसलमानों की अलग ? या कि, फिजिक्स भारत की अलग होती है और इंग्लैंड की अलग ? और गणित भारत का अलग होता है और चीनियों का अलग ? नहीं। प्रकृति के नियम एक हैं और वे चीनी और भारतीय में भेद नहीं करते। वे पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी में अंतर नहीं करते। प्रकृति की भाषा एक हैं, वह हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में भेद नहीं करती। अगर प्रकृति और पदार्थ के नियम एक हैं तो क्या आत्मा के नियम अनेक हो सकते हैं ? परमात्मा के नियम अलग हो सकते हैं ? उनके नियम भी एक हैं। वे नियम भी सार्वलौकिक (Universal) हैं। उन नियमों को हम अब तक नहीं खोज पाये, क्योंकि धर्मों के अत्याधिक मोह ने, धर्म को जगने ही नहीं दिया। कोई हिन्दू है, कोई जैन और कोई ईसाई। और वे सब इतने अतिशय रूप से किसी पंथ, किसी शास्त्र, किसी पथ, और किसी शब्द से बंधे हुये हैं कि वे उस सार्वलौकिक सत्य को देखने में समर्थ नहीं रह गये हैं। वे शास्त्रों के इतने पक्ष में हैं कि सत्य के पक्ष में नहीं हो सकते हैं। क्योंकि हो सकता है कि

सार्वलौकिक सत्य के सामने उनके शास्त्र गलत हो जायें।

पंथों ने दुनिया में सार्वलौकिक धर्म (Universal Religion) को पैदा नहीं होने दिया। मैं पंथों के विरोध में हूं। मैं संप्रदायों के विरोध में हूं, मैं धर्म के विरोध में नहीं हूं। धर्म के विरोध में तो कोई हो ही नहीं सकता है क्योंकि जो बीज एक ही है उसके विरोध में कैसे हुआ जा सकता है? सत्य के विरोध में कोई नहीं हो सकता है, सिद्धांतों के विरोध में हो सकता है। उस एक धर्म, एक सत्य से संबंधित होने के लिये, अनेक से बंधा हुआ हमारा जो चित्त है, उसका मुक्त होना जरूरी है।

और ये आपसे किसने कह दिया कि मैं महापुरुषों के विरोध में हूं? मैं तो एक ही बात कहता हूं कि जब तक हम दुनिया में महापुरुष बनाये चले जायेंगे तब तक छोटे पुरुष भी पैदा होते रहेंगे। वे बंद नहीं हो सकते। जब हम एक व्यक्ति को महान कहते हैं तब शेष सब को क्षुद्र और नीचा कह देते हैं। ये हमें दिखाई नहीं पड़ता कि एक व्यक्ति के सम्मान में शेष सब का अपमान छिपा है। जब हम एक व्यक्ति को पूज्य बना देते हैं तो शेष सबको? और जब हम एक की मंदिर में प्रतिष्ठा कर देते हैं तो बाकी सबकी? ये महानतायें, क्षुद्रताओं पर खड़ी हैं। अगर दुनिया से क्षुद्रतायें मिटानी हों तो स्मरण रखिये महानताओं को भी विदा करना होगा। नहीं तो ये बातें साथ-साथ जिन्दा रहेंगी।

हर मनुष्य के भीतर महान छिपा हुआ है। किसी में प्रगट, किसी में अप्रगट लेकिन जिसमें अप्रगट है उसे भी नीचा कहने का कोई कारण नहीं है। एक वृक्ष खड़ा हुआ है और उसके पास एक छोटा-सा बीज पड़ा हुआ है। बीज और वृक्ष में कोई फर्क है? वृक्ष महान है और बीज क्षुद्र? और अगर बीज क्षुद्र है तो वृक्ष महान हो कैसे जायेगा? क्षुद्र से जन्मेगा और महान हो जायेगा? नहीं, अगर बीज क्षुद्र है तो फिर वृक्ष कभी महान नहीं हो सकता, और अगर वृक्ष महान है तो बीज अपने में सारी महानता लिये बैठा है। फर्क केवल अभिव्यक्ति का है, महानता का नहीं। तो दुनिया में छोटे और बड़े लोग नहीं हैं, दुनिया में बीज और वृक्ष हैं। लेकिन क्या बीज बुरा है? और अगर बीज बुरा है, तो वृक्ष भी भला नहीं हो सकता है। इसीलिये मैं इस तरह के वर्गीकरण के विरोध में हूं कि फलां आदमी महान है और फलां आदमी छोटा और क्षुद्र है। दुनिया में इतना ही फर्क है कि कोई वृक्ष है और कोई बीज। बीज भी पूरी गरिमा से भरा हुआ है। आज नहीं कल उससे वृक्ष का जन्म होगा।'

समाज में छोटे पुरुष और महापुरुष का वर्ग विभाजन नहीं चाहिए। हमने केवल सम्पत्ति बांट ली है, हमने न केवल गरीब–अमीर ही पैदा कर लिये हैं, हमने छोटे और बड़े आदमी भी पैदा कर लिये हैं। इस सत्य को कि "कोई आदमी बड़ा नहीं है, क्योंकि कोई आदमी छोटा नहीं है" जब तक हम पूरे मन प्राण तक नहीं पहुंचा देते तब तक दुनिया में इक्के महापुरुष पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान मनुष्यता का जन्म नहीं होगा।

पूरा नगर यदि गंदगी से भरा हुआ है और उसमें एकाध फूल खिल जाये तो क्या करियेगा उस फूल का ? उससे क्या होना है ? क्या फर्क पड़ता है ? अब तक ऐसा ही हुआ है। महापुरुष पैदा हुये हैं, लेकिन महान मनुष्यता आज तक पैदा नहीं हो पाई। और जब तक हम इन इनके दुक्के महापुरुषों को ही आदर और श्रद्धा देते रहेंगे, और मनुष्य के भीतर, समस्त मनुष्यता के भीतर छिपा हुआ जो महान तत्व है, उसको आदर न देंगे तब तक दुनिया में दूसरे तरह की मनुष्यता का जन्म न होगा। मैं नहीं चाहता कि कोई आदमी किसी की पूजा करे। क्योंकि मुझे यह दिखाई पड़ता है कि जिसकी वह पूजा कर रहा है वह उसके भीतर भी बैठा है। ये किसी महा-पुरुष के प्रति अनादर नहीं है। बल्कि समस्त के भीतर जो महान छिपा है उसकी स्वीकृति है। इसमें किसी का अपमान और अनादर नहीं है। बुद्ध और महावीर इससे दुखी न होंगे कि आप भी बुद्ध और महावीर हो गये, बल्कि इससे तो वे आनंदित होंगे, प्रसन्न होंगे। इसी के लिये तो जीवन भर वे चेष्टा करते रहे, दौड़ते रहे गांव गांव, नगर–नगर कि जो उनके भीतर जगा है, वह आपके भीतर भी जग जाये। और आप क्या करे रहे हैं? आप उनकी पूजा कर रहे हैं, और कह रहे हैं कि तुम महान हो हम क्षुद्र हैं, हम न कुछ हैं, हम तो इसी लायक हैं कि तुम्हारे पैरों में पड़े रहें।

ये हमारी तरकीबें हैं। हमारे भीतर जो महानता सोई है उसे जगाने में लगने वाले श्रम से बचने के उपाय हैं। हम एक महापुरुष को पकड़ लेते हैं, और उसकी पूजा करते हैं। हम ये भूल ही जाते हैं कि महापुरुष जब हमारे बीच पैदा होता है तो वह हमसे पूजा पाने को नहीं बल्कि हमारे भीतर इस प्रेरणा, इस प्रतीति और और इस आकांक्षा को जगाने के लिये कि जो उसके भीतर विकसित हुआ है, वह हमारे भीतर भी विकसित हो जाये।

मैं किसी महापुरुष के विरोध में क्यों होने लगा ? मैं तो किसी छोटे पुरुष

के भी विरोध में नहीं हूं। लेकिन यह सोचने का ढंग गलत है, एक ऐसी दुनिया चाहिए, जहां प्रत्येक के भीतर जो श्रेष्ठतर है, वह विकसित हो। ऐसी दुनिया नहीं चाहिए, जहां एकाध श्रेष्ठ व्यक्ति पैदा हों और शेष सब उसकी पूजा करें, प्रार्थना करें, स्तुति करें, उसे महान कहें और भगवान कहें। ऐसी दुनिया में हम बहुत जी चुके और उससे कोई हित नहीं हुआ। अब तो हमें सर्वजन के भीतर जो छिपा है, उसे ही आदर और सम्मान देना चाहिए ताकि वह विकसित हो सके।

समाचार विभागः

धर्म चक्र प्रवर्तनः

आचार्य श्री के देशव्यापी कार्यक्रम :

"सत्य का द्वार है–शून्य। मिटो ताकि उसे पा सको। जो मिटते हैं, वे अमृत को पा लेते हैं।"

राजघाट एनीबीसेंट स्कूल वाराणसी में सत्संग :

वाराणसी नगर में आचार्यश्री के आगमन की पावन प्रतीक्षा पिछले दो वर्षों से की जा रही थी। नगर के आध्यात्मिक पिपासुओं को वह पावन अवसर १२, १३, १४ तथा १५ अगस्त के आचार्यश्री के अति व्यस्त सत्संग के कार्यक्रम में मिला। आचार्यश्री के राजघाट एनीबीसेंट स्कूल में प्रतिदिन सुबह, प्रवचन आयोजित किये गये थे। यहां पर आचार्यश्री ने कहा, "सत्य और स्वयं के बीच अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। इसलिये ही जो स्वयं को खोता है, वही उसे पाता है। स्वयं को खोने के मूल्य पर ही परमात्मा पाया जाता है। साहस करो और मिट जाओ। मृत्यु तो मिटायेगी ही। क्या उसके पूर्व हम स्वयं ही अपने 'मैं' को नहीं खो सकते हैं? और जो अहंकार से शून्य हो जाते हैं फिर उसे मृत्यु भी मिटाने में असमर्थ हो जाती है क्योंकि अहंकार के धुयें के जाते ही उस आत्मा के दर्शन होते हैं जिसकी कोई मृत्यु नहीं है।"

"तोड़ना ही है तो तोड़ो जड़ताओं को...सामाजिक और आर्थिक दासताओं को...मन की अमूर्छा को...."

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में युवकों के मध्य क्रांतिकारी उद्‌बोधन :

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में १३ अगस्त की सुबह युवकों और विद्यार्थियों के मध्य आचार्यश्री का प्रवचन आयोजित किया गया था। आचार्यश्री ने कहा, "आज पूरे मुल्क में युवक तोड़–फोड़ में लगे हुए हैं। यह उनके मन में आई क्रांति का प्रतीक है। लेकिन यह क्रांति जीवन के उदात्त मूल्यों के प्रति नहीं है। आज भारत के सामने बुनियादी, सामाजिक और आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। इस ओर युवक अपनी शक्ति का सृजनात्मक उपयोग करें तो बहुत शुभ फलित हो सकता है। स्वयं युवकों को उनके स्वयं के जीवन में बहुत सृजन के अवसर हैं और युवक अपने अंतर्जीवन में परिवर्तन करके जीवन में उदात्त मूल्यों को जन्म दे सकते हैं।"

★

"मित्र, शांति के दर्पण बनो ताकि परमात्मा का चन्द्रमा तुम में प्रतिफलित हो सके।"

ब्रह्मविद्यासमाज वाराणसी में सत्संग :

वाराणसी में ब्रह्मविद्यासमाज के द्वारा आचार्यश्री के संध्याकालीन प्रवचन आयोजित किये गये थे। यहां पर आचार्यश्री ने अविचार, विचार और निर्विचार पर तीन प्रवचन दिये। उन्होंने कहा, "जीवन अपनी पूर्णता में केवल उस चित्त के समक्ष ही प्रगट होता है, जो कि निर्विचार को उपलब्ध हो जाता है। विचार बाधा है। विचार की विक्षिप्त तरंगें चित्त को मौन और शून्य नहीं होने देती हैं। और जब तक चित्त मौन और शून्य नहीं है, तब तक वह ऐसा दर्पण नहीं बन पाता है जो कि सत्य को प्रतिफलित कर सके। सत्य तो निकट है, लेकिन हम शांत नहीं हैं। पूर्णिमा का चांद तो आकाश में है लेकिन झील विक्षुब्ध है। इसलिये उसे नहीं जान पा रही है। जैसी ही झील शांत होगी, चांद उसके हृदयों के हृदय में विराजमान हो जायगा। इसलिये मैं कहता हूं–मौन...मौन...मौन ...मौन... हो जाओ ताकि तुम उसे सुन सको और जान सको जो कि परमात्मा है। मित्र, उसे जानते ही जीवन एक आनन्द, एक संगीत और एक सौन्दर्य बन जाता है।"

"अहिंसा है आनन्द का फल और आनन्द ? आनन्द है आत्मज्ञान का आलोक।"

रोटरीक्लब डालमियानगर में :

पूज्य आचार्यश्री १५ अगस्त की संध्या डालमियानगर पधारे। इस अवसर पर उन्हें सुनने के लिये यहां का प्रबुद्ध वर्ग उपस्थित हुआ। आचार्यश्री ने यहां कहा, "मनुष्यता आत्मघाती प्रवृत्तियों से पीड़ित है। ५ हजार वर्षों के छोटे-से इतिहास में १४ हजार ६ सौ युद्ध हुये हैं। और अब तो उस युद्ध की तैयारी चल रही है जो कि मनुष्य का ही नहीं, वरन् जीवन मात्र की पृथ्वी से समाप्ति बन सकता है। इस रुग्णता के मूल में क्या है? इसके मूल में है, आनन्द का अभाव। दुखी व्यक्ति दूसरों को भी दुखी देखना चाहता है। बस, यही एक सुख उसके जीवन में होता है। इससे ही हिंसा जन्मती है और हिंसा के रस में वह स्वयं की भी आहुति दे सकता है। जीवन में आनन्द हो तो ही अहिंसा हो सकती है। अहिंसा, प्रेम और करुणा, आनन्द से ही प्रवाहित होते हैं। हिंसा, घृणा और क्रूरता दुख की संततियां हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि मनुष्य के प्राणों में आनन्द को संचारित करो। उसके चित्त को संगीतपूर्ण बनाओ। उसके हृदय को आलोकित करो। इसके अतिरिक्त उसे बचाने का और कोई उपाय नहीं है। और यह कैसे होगा? आनन्द आत्मज्ञान का फल है। जो स्वयं को जान लेता है, वह अनायास ही आनन्द से भर जाता है। स्वयं को जानते ही अंतस् के सारे संताप वैसे ही विलीन हो जाते हैं, जैसे प्रकाश के आगमन से अंधकार विदा हो जाता है। वस्तुतः तो अंधकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह भी आत्मज्ञान का अभाव है। और आत्मा है निकटतम। वही है हमारा होना। बस उसके प्रति जागना है। जागो, बाहर के प्रति जागो। होश से भरो। अमूर्छित बनो। फिर वह जागरण ही भीतर के प्रति लाओ। मन के प्रति जागो। जागरण...सतत् जागरण अंततः उसके प्रति जगा देता है जो कि मैं हूं। और उसे जानते ही सब बदल जाता है। आलोक के साथ ही आता है आनन्द। और आनन्द के साथ ही आती है अहिंसा। ऊपर से नहीं थोपी जा सकती, वह तो आती है...आनन्द के पीछे आती है।"

★

"ईश्वर कोई किताबी सत्ता नहीं है, वह तो व्यक्ति की अंतर्सत्ता है :"

लियोनार्ड थियोलाजिकल कालेज जबलपुर में प्रवचन :

जबलपुर नगर में ईसाई मिशनरी संस्था द्वारा संचालित लियोनार्ड थियो-

लॉजिकल कालेज में २२ अगस्त की मध्यांह आचार्यश्री प्रवचन देने पधारे। इस संस्था में देश के अनेक भागों के विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। प्रवचन के मध्य क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त करते हुये आचार्यश्री ने कहा, "किताबों के अध्ययन से ईश्वरीय ज्ञान को कैसे सीखा जा सकता है? ईश्वर भी क्या कोई सीखने की बात है? वह तो जिन्दगी के विराट आयोजन में देखने की बात है और जो भी व्यक्ति आंख खोलकर जीता है उसे इस जगत के विराट आयोजन में ईश्वर की सत्ता का बोध होता है। इससे किताबों से नहीं ईश्वर को जीकर जाना जाता है। व्यक्ति जब स्वयं को उसमें खो देता है तो वह उसे जान लेता है जिसको जानने के लिए वह किताबों की व्यर्थ की ऊहापोह में भटकता है। इससे मैं कहता हूं—ईश्वर कोई किताबी सत्ता नहीं है, वह तो व्यक्ति की अंतर्सत्ता है।"

★

"प्यास, और प्यास, और प्यास...क्योंकि प्यास ही अंततः तृप्ति बन जाती है।"

अहमदाबाद में सत्संग :

पूज्य आचार्यश्री अहमदाबाद जीवन जागृति केन्द्र के आमंत्रण पर त्रिदिवसीय सत्संग के लिये पधारे। यहां पर बहुत बड़ी संख्या में प्रेमी जिज्ञासुओं ने सत्संग में भाग लिया। श्रोताओं से सभा भवन खचाखच भर गया था और काफी संख्या में तो जिज्ञासुगण बाहर खड़े होकर अमृतवचन सुने। यहां पर सत्य की खोज, विषय पर आचार्यश्री ने प्रवचन दिया। उन्होंने कहा, "सत्य की खोज के लिये चाहिये ज्वलंत प्यास, ऐसी प्यास जो सत्य के अतिरिक्त और किसी भी चीज से तृप्त न हो। सिद्धातों, शब्दों और शास्त्रों से जो तृप्त हो जाते हैं, वे वस्तुतः प्यासे ही नहीं हैं। क्या वस्तुतः प्यास हो तो कोई पानी की बातों से तृप्त हो सकता है? और प्यास गहरी होती जाये तो अंततः वही प्राप्ति बन जाती है क्योंकि जो सरोवर उसे बुझा सकता है, वह तो सदा ही है और साथ ही है वह तो स्वयं के भीतर ही है।"

★

"स्वतंत्र बनो। तोड़ो चित्त की जंजीरों को। मुक्ति की प्रथम शर्त यही है।"

भारतीय विद्याभवन बंबई में प्रवचन :

पूज्य आचार्यश्री २८ अगस्त को भारतीय विद्याभवन में बंबई के नागरिकों को उद्‌बोधित करने के लिये पधारे। उन्होंने वहां कहा, "परमात्मा की दिशा में

सबसे बड़ी बाधा क्या है? परतंत्रता...। परतंत्र चित्त ही सबसे बड़ी बाधा है। चित्त को स्वतंत्र बनाओ। शब्दों, सिद्धांतों और शास्त्रों के कारागृह से स्वयं को बाहर लाओ। मनुष्य स्वयं ही परंपराओं की कड़ियों में स्वयं को बांधे है। और इन्हें तोड़े बिना सत्य के सागर में कोई गति नहीं हो सकती है। अज्ञात में जाने के लिये ज्ञात को छोड़ना ही पड़ता है।"

★

"धर्म है जीवन को जीने की कला और सत्य है जीवन में उसकी सुगन्ध :

अशोक छात्रावास जबलपुर के छात्रों की विशाल सभा में :

जबलपुर नगर के विद्यार्थियों को पूज्य आचार्यश्री के प्रवचन का सौभाग्य प्रतिवर्ष प्राप्त हो जाया करता है। विद्यार्थीगण भी जब तक आचार्यश्री को किसी भी पर्व के बहाने सुन न लें तब तक वे अपने को सौभाग्यशाली अनुभव नहीं करते। विद्यार्थीगण ने पूज्य आचार्यश्री को इस वर्ष १ सितंबर को गणेश उत्सव में अशोक छात्रावास पचपेड़ी में आमंत्रित किया। आचार्यश्री ने यहां कहा, "धर्म जीवन के अंतर्रहस्यों को जानने की कला है। और जो जीवन के इन अंतस् स्रोतों से अपरिचित रह जाता है, वह अपने जीवन को व्यर्थ खो देता है। फिर उसके जीवन में कागज के फूलों की सुवास के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इससे धर्म है व्यक्ति के जीवन का उत्स, जहां पहुंचकर व्यक्ति अतीव शांति और प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसके जीवन से सत्य की सुगन्ध बिखरती है जो चारों तरफ परिव्याप्त होकर अद्भुत सौन्दर्य का आयोजन करती है।"

★

"परमात्मा है प्रकाश की भांति। उसे जानने को चाहिये प्रज्ञा की आंखें।"

पटना में त्रिदिवसीय सत्संग :

पटना महानगर में पूज्य आचार्यश्री के प्रतिवर्ष सत्संग के कार्यक्रम आयोजित होते हैं। इनमें पटना नगर के सभी वर्गों के प्रबुद्ध नागरिकगण भाग लेते हैं। यहां पर ५,६ तथा ७ सितंबर को आचार्यश्री के प्रवचन नगर के विभिन्न भागों में आयोजित किये गये थे। महाविद्यालय के छात्र, छात्राओं के अतिरिक्त पटना जीवन जागृति केन्द्र के आमंत्रण पर बिहार के श्रेष्ठतम कोटि के प्रतिभावान व्यक्तियों ने आचार्यश्री के अमृत प्रवचन सुने। आचार्यश्री ने वहां कहा, "धर्म प्रकाश की भांति है, परमात्मा भी। उसे देखने को प्रज्ञा की आंखें चाहिये।

अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में विचार भी करे तो क्या करेगा? वह तो प्रकाश की कोई भी धारणा नहीं बना सकता है और जो भी वह कल्पना करेगा, वह अनिवार्यतः गलत होगी। इसलिये विचार से न प्रकाश जाना जा सकता है न परमात्मा। निर्विचार की आंखें हों, तो ही परमात्मा है। विचार के ऊहापोह में विचार की विक्षिप्त तरंगों में आंखें बंद हैं। विचारों को बिदा दें और देखें– निर्विचार मौन 'मैं' जिसका प्रत्यक्ष होता है, वही सत्य है। वही स्वयं की और सर्व की सत्ता है।"

★

"धर्म है वास्तविक जीवन की खोज और जो उसे नहीं खोजता, वह व्यर्थ ही जीवन खो देता है :"

कटनी जीवन जागृति केन्द्र में प्रवचन :

कटनी में जीवन जागृति केन्द्र के द्वारा पूज्य आचार्यश्री का ८ सितंबर को प्रवचन आयोजित किया गया था। यहां पर एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुये आचार्यश्री ने कहा, "धर्म है जीवन के वास्तविक मूल्य को पाने की दिशा। लेकिन मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह बाहर के जीवन में तो संपदा को खोजता है जहां उसकी खोज अधूरी रह जाती है। उसकी खोज पूरी तभी होती है, जब वह भीतर की संपदा को भी खोजता है। इस तरह पूर्ण संपदा के ज्ञात होने पर ही मनुष्य बाहर सशक्त जीवन शक्ति का अनुभव करता है तो भीतर शांति के अपरिसीम आनन्द को। मैं एक ऐसे ही मनुष्य को जन्म देना चाहता हूं जो बाहर से पूर्ण सशक्त हो और भीतर से अपरिसीम शांति से भरा हो। यही जीवन की पूर्णता है।"

★

"भारत को अपने भाग्य को बदलने के लिये क्रांति की तीव्र आवश्यकता है":

जीवन जागृति केन्द्र जबलपुर के वार्षिकोत्सव में उद्‌बोधन :

जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र का वार्षिक उत्सव १० तथा ११ सितंबर को मनाया गया। इस अवसर पर पूज्य आचार्यश्री की विशेष वार्ताएं केन्द्र द्वारा शहीद स्मारक भवन में आयोजित की गई। आचार्यश्री ने यहां कहा, "भारत का यह महादुर्भाग्य रहा है कि उसने अपने दुर्भाग्य को ही भाग्य समझा और दीनता

तथा दरिद्रता को सराहाने "फिलासफी आफ पावरटी" को हमने विकसित किया और उसका परिणाम हुआ कि आज भारत दुनिया के देशों की सहायता पर अपने अस्तित्व को बनाये हुये है। अब जरूरत है कि हम "फिलासफी आफ रिचनेस" को भारत में जन्म दें और विकसित टेक्नालॉजी के द्वारा अधिक से अधिक धन पैदा करके एक सुखी और समृद्ध समाज को जन्म दें। जब तक शरीर के तल पर सुखी और समृद्ध समाज पैदा नहीं होता तब तक कोई आध्यात्मिक जीवन की संभावना समाज के तल पर नहीं विकसित हो सकती। इससे प्राथमिक रूप से भारत को अपने शरीर की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये विकसित टेक्नालाजी का पूरा पूरा उपयोग करना है और जब शरीर की आवश्यकताएं पूरी हो जायेंगी तो ही केवल समाज के तल पर व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक जीवन का उदय होगा। "इस क्रांतिकारी उद्‌बोधन को आचार्यश्री ने आज के युग में भारत के लिये बहुत ही आवश्यक निरूपित किया और सुखी तथा समृद्ध समाज के विकास पर बहुत बल दिया।"

★

"सत्य है सीमाओं से मुक्त चित्त में – और वहीं है प्रेम और परमात्मा का मंदिर ।"

बड़ौदा जीवन जागृति केन्द्र में सत्संग :

पूज्य आचार्यश्री १७,१८, १९ तथा २० सितंबर को बड़ौदा जीवन जागृति केन्द्र के आमंत्रण पर बड़ौदा नगर की विभिन्न संस्थाओं, विश्वविद्यालय तथा सार्वजनिक सभाओं को संबोधित करने के लिये पधारे। यहां शिवाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय में आचार्यश्री की वार्ताएं आयोजित की गई थीं। सार्वजनिक सभायें टाउनहाल में आयोजित की गई थीं। एक बहुत ही बड़े जनसमूह ने आचार्यश्री की बोध वार्ताएं सुनीं। आचार्यश्री ने अपनी अमृतवाणी से यहां कहा, "धर्मों में नहीं, धर्म में त्राण है। धर्मों ने ही तो धर्म के प्राण ले लिये हैं। हिन्दू, जैन, ईसाई, बौद्ध, मुसलमान । इन नामों ने ही सब उपद्रव कर दिया है। इन नामों के कारण ही. . .इन देहों के कारण ही धर्म की आत्मा विस्मृत हो गई है। मैं धार्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण यही मानता हूं कि वह किसी संप्रदाय और किसी सीमा में आबद्ध न होगा। वह तो सब सीमाएं छोड़ देगा ताकि असीम को जान सके। सीमा में बंधा चित्त असीम को नहीं जान सकता है। सत्य किसी सिद्धांत में नहीं है और न परमात्मा ही किसी चर्च या मंदिर में कैद है। सत्य

तो है उस चित्त में, जो सब सीमाओं से मुक्त है और परमात्मा है उस मंदिर में जिसकी कोई दीवार नहीं। कौन-सा है वह मंदिर, वह मंदिर, है प्रेम का। प्रेम ही है वह मंदिर, जो कि परमात्मा का है।"

★

"मैं विद्रोह का स्वागत करता हूं, लेकिन अंधे विद्रोह का नहीं, आंखोंवाले विद्रोह का।"

प्रांतीय शिक्षण महाविद्यालय जबलपुर के प्रशिक्षार्थियों को उद्‌बोधन :

पूज्य आचार्यश्री प्रांतीय शिक्षण महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों के निमंत्रण पर २३ सितंबर को मध्यान्ह में उनके मध्य पधारे। उन्होंने महाविद्यालय के प्रशिक्षार्थियों को संबोधित करते हुये कहा, "विद्रोह की अग्नि जिस हृदय में नहीं है, वह हृदय मृत मांस पिंड है। विद्रोह ही जीवन है और विद्रोह ही है विकास। लेकिन ऐसा विद्रोह वहीं होता है जहां कि विवेक होता है। विवेकशून्य विद्रोह आत्मघात बन जाता है और विवेक से युक्त विद्रोह है सृजन की ऊर्जा। विवेक को जगाओ और विद्रोही बनो। विवेक ही है विद्रोह की शक्ति। उस विद्रोह में मनुष्य के बंधन को तोड़ो। उसकी मानसिक गुलामी तोड़ो। अतीत के मृत बोझ जला डालो। लेकिन स्मरण रहे कि विवेक न हुआ तो तुम स्वयं को ही जला डालोगे। और ऐसा ही हो रहा है। जिस शक्ति से युवक नये समाज का निर्माण कर सकते हैं, वे उससे स्वयं को ही अपंग किये ले रहे हैं। मैं तो विद्रोह का स्वागत करता हूं, लेकिन अंधे विद्रोह का नहीं, आंखवाले विद्रोह का। अंधा विद्रोह एक अति से दूसरी अति पर ले जाता है। वह कुएं से निकलकर खाई में गिरना है। जबकि जीवन का विकास है मध्य में, आंखें हों तो ही हम मध्य के स्वर्ण पथ पर हो सकते हैं।"

★

"काम की ऊर्जा का विकास जीवन में प्रेम को जन्म देता है और प्रेम धर्म का केन्द्रीय बिन्दु है।"

ग्वालिया टैंक बंबई में—काम, प्रेम और धर्म पर प्रवचन :

आज के दिशाविहीन युग में पूज्य आचार्यश्री देश के कोन-कोने में युवकों और युवतियों को, प्रौढ़ उम्र के व्यक्तियों को तथा किशोर उम्र के बालकों और छोटी उम्र के बच्चों के लिये जीवन की वैज्ञानिक दिशाओं को दे रहे हैं। काम,

सेक्स जीवन का केन्द्रीय मसला है। इसपर आचार्यश्री का वैज्ञानिक अन्वेषण है और उनकी दृष्टि से यदि काम पर जीवन में ठीक से प्रयोग किया गया तो काम की शक्तिशाली ऊर्जा ही व्यक्ति को प्रेम मंगल लोक में प्रतिष्ठा दिलाती है और व्यक्ति के जीवन में पहली बार प्रेम का स्रोत बहता है। काम, प्रेम और धर्म पर अपनी अभिनव वैज्ञानिक जीवन दृष्टि जनमानस तक पहुंच सके, इसके लिये पूज्य आचार्यश्री के जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा २८, २९, ३० सितंबर तथा १ और २ अक्तूबर को ग्वालियाटैंक पर सार्वजनिक प्रवचन आयोजित किये गये थे। इन प्रवचनों में आचार्यश्री ने कहा, "काम, सेक्स से लड़कर आज तक कोई भी काम से मुक्त नहीं हो सका है। न ही काम को दबाकर कोई काम से मुक्त हुआ है। काम के प्रति जब तक स्वस्थ वैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण व्यक्ति के जीवन में जन्म नहीं लेता तब तक काम, सेक्स एक समस्या है। आपने कहा कि काम को उसकी पूरी गहराइयों में होश से समझना है और उसके प्रति यह समझ ही व्यक्ति की काम की शक्ति को समस्त जगत के प्रति प्रेम में रूपांतरित कर देती है।"

★

"युवा मन ही जीवन की श्रेष्ठतम सृजनात्मक कुंजी:"

जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र में प्रवचन :

जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र में पूज्य आचार्यश्री ५ अक्तूबर को पधारे। यहां पर तरुणों की विशाल जनसभा को संबोधित करते हुये आचार्यश्री ने कहा, "मृत आस्थाएं और उधार विचार नहीं, वरन् जीवन में स्वयं प्रयोग करके ही युवक जीवंत अनुभूतियों के जगत् में प्रवेश पाता है। नवीन से नवीन प्रयोग करने का साहस युवकों के विकास में सहयोगी होता है। इसके लिये चाहिये युवामन। युवामन का उम्र से कोई वास्ता नहीं। जो व्यक्ति जीवन के अंतरतम् रहस्यों से परिचित होना चाहता है, उसे संपूर्ण शक्ति का प्रयोग इसी दिशा में करना अपरिहार्य है। तभी केवल व्यक्ति अपनी चेतना के लोक में आता है।"

★

"जीवन के अर्थ को जानना है? तो चलो निर्विचार समाधि में, उसके अतिरिक्त सब व्यर्थ है"

पूज्य आचार्यश्री १२, १३ तथा १४ अक्तूबर को पूना जीवन जागृति केन्द्र के आमंत्रण पर पूना पधारे। उनके सान्निध्य से पूना में वैचारिक क्रांति की लहर

फैल गई। उन्होंने यहां कहा, "विश्वासों को विचार के अस्त्र से छिन्न-भिन्न कर दो और फिर विचार को भी निर्विचार से विदा दे दो। और तब जो शेष रह जाता है, वही सत्य है। निर्विचार समाधि में ही पूर्ण जीवन के प्रति आंखें खुलती हैं। और यह आंखों का खुलना व्यक्ति को एक बिल्कुल ही अभिनव लोक में प्रतिष्ठा दे देता है। उस अज्ञात लोक को जाने बिना न तो जीवन में अर्थ है और न अभिप्राय। उसे जानकर अर्थ उपलब्ध होता है और कृतार्थता और धन्यता का अनुभव होता है।"

★

"शब्द और शास्त्र से सत्य नहीं, जीवंत अनुभूतियों से सत्य उपलब्ध होता है।"

वेदान्त सम्मेलन अमृतसर में क्रांतिकारी उद्‌बोधन :

पूज्य आचार्यश्री वेदान्त सम्मेलन के आमंत्रण पर १६ तथा १७ अक्तूबर को अमृतसर पधारे। यहां पर आचार्यश्री ने बहुत ही क्रांतिकारी तथा ओजस्वी प्रवचन दिये कि सम्मेलन में उपस्थित श्रोताओं तथा देश के अनेक प्रतिष्ठित साधुओं ने सत्य की ओर अभिनव क्रांतिकारी दर्शन पाया। आचार्यश्री ने यहां कहा, "जहां शब्द और शास्त्र नहीं ले जाते, वहां जीवन की जीवंत अनुभूतियां ले जाती हैं। शब्द और शास्त्र तो व्यक्ति के सत्य के मार्ग में बाधा हैं। सत्य तो उस चेतना में प्रतिफलित होता है जो शब्द और शास्त्र से शून्य होती है।"

★

"चित्त की परम स्वतंत्रता ही परमात्मा को पाने की पात्रता है।"

गाडरवाड़ा जीवन जागृति केन्द्र में प्रवचन :

पूज्य आचार्यश्री के २० तथा २२ अक्तूबर को गाडरवाड़ा जीवन जागृति केन्द्र में प्रवचन आयोजित किये गये थे। उन्होंने अपने प्रवचन में नागरिकों को "मौलिक चिंतन" और "मानसिक स्वतंत्रता" के लिये प्रेरणा दी। उन्होंने कहा, "परमात्मा का द्वार उनके लिये सदा से बंद है जो कि मानसिक रूप से परतंत्र हैं। यह परतंत्रता है विश्वासों की, परम्पराओं की, पक्षपातों की। स्वतंत्र चित्त विश्वासों के अंधकार से नहीं, विवेक के आलोक से मंडित होता है। विवेक ही स्वतंत्रता है। इसलिये उधार विश्वासों से तृप्त मत होना। विश्वास से अज्ञान मिटता नहीं, बस छिप जाता है। अज्ञान की मृत्यु के लिये तो जगाना होता है स्वयं के विवेक को। विवेक प्रकाश में और स्वतंत्रता में प्रतिष्ठा देता है और ऐसी प्रतिष्ठा ही परमात्मा को जानने और पाने की पात्रता है।"

"शरीर के तल पर जब व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी होती हैं तो पहली बार उसके जीवन में अध्यात्म की आवश्यकता पैदा होती है।"

कार्ल मार्क्स तथा बुद्ध पर 'विकास' संस्था में उद्‌बोधन :

जबलपुर नगर की तरुण मित्रों की संस्था 'विकास-' द्वारा पूज्य आचार्यश्री का २४ अक्तूबर को "कार्ल मार्क्स तथा बुद्ध" विषय पर प्रवचन आयोजित किया गया था। प्रवचन में आचार्यश्री ने विषय पर क्रांतिकारी उद्‌बोधन दिया। आपने कहा, "आज भारत में जो दरिद्रता और दीनता है उसमें कोई धार्मिक समाज के पैदा होने की संभावना नहीं है। धर्म दीनता और दरिद्रता में पैदा नहीं होता। धर्म को, काव्य को, संगीत को, कला को पैदा होने के लिये चाहिये समृद्धि। जब कोई समाज समृद्ध होता है तभी वह धार्मिक हो सकता है। इससे आज भारत में पहले समाज के तल पर शरीर की आवश्यकताएं पूरी होने के लिये मार्क्स के समाज के निर्मित होने की आवश्यकता है। जब ठीक से समाज की शरीर की आवश्यकताएं पूरी हो जायेंगी तभी पहली बार समाज के तल पर अध्यात्म का जन्म होगा। इससे मार्क्स पहले हैं, बुद्ध बाद में। यदि मैं रूस गया तो वहां कहूंगा कि भूल जाओ अब मार्क्स को, मार्क्स की तुम्हारी जरूरत पूरी हो गई। अब याद करो तुम बुद्ध को, महावीर को, ईसा को। और इस बात की बहुत संभावना है कि आनेवाले युग में अमरीका तथा रूस अध्यात्म को समाज के तल पर जन्म दे सकें।"

★

"मैं कोई धार्मिक संगठन नहीं, सामाजिक क्रांति के लिये सशक्त संगठन चाहता हूं।"

कार्यकर्त्ता सम्मेलन नारगोल में उद्‌बोधन :

"धर्म का कोई संगठन नहीं हो सकता, न ही मैं चाहता हूं कि धर्म का कोई संगठन हो। वह तो वैयक्तिक जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। लेकिन समाज के तल पर आज अपने देश को क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। देश आज आर्थिक शोषण से संकटग्रस्त है, शिक्षा के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है और जीवन के मूल्यों में वैज्ञानिक चिंतन तथा नई जीवन दृष्टि की आवश्यकता है मैं इसके लिये ही एक ऐसा युवकों का सशक्त सैन्य शक्तिपूर्ण संगठन चाहता हूं जो देश की समस्याओं पर विचार कर सके और स्वयं के तथा समाज के जीवन को क्रांतिकारी मोड़ दे सके।" इस क्रांतिकारी आवाहन को आचार्यश्री ने नारगोल में, गुजरात राज्य, सूरत के निकट अभिव्यक्त किया। यह कार्यकर्त्ता सम्मेलन ३१ अक्तूबर को आयोजित किया गया था।

(शेष पृष्ठ २ से आगे)

दिनांक :	स्थान :	कार्यक्रम :	संयोजक
२५, २६ तथा २७ दिसंबर ६८	नागपुर	सत्संग:	श्री बाबा उतरवारजी एवं श्री लक्ष्मी नारायणजी मालाणी, आनन्द निकेतन, नं. ५ पंचशील बिल्डिंग, वर्धा रोड, **नागपुर**, फोन: ३३२७९.
२९ दिसंबर ६८	शहीद स्मारक भवन, जबलपुर	प्रवचन:	श्री अजितकुमार, मंत्री: जीवन जागृति केन्द्र, ७८६, लार्ड गंज, **जबलपुर**
६ एवं ७ जनवरी ६९	बंबई CANCELLED	प्रवचन:	श्री प्रेमचंदजी माहेश्वरी, जीवन जागृति केन्द्र, २९, ईस्टर्न चेम्बर्स, १२८, पूना स्ट्रीट, आरगायल रोड, **बंबई**: ९, फोन: ३२५८१६
७, ८, ९ तथा १० जनवरी ६९	बंगलोर CANCELLED	सत्संग:	श्री सी. जे. दौलिया, इंजीनियर, एवं कान्ट्रेक्टर, १२, केम्ब्रिजरोड, अलसूर, **बंगलौर** : ८, फोन: ७१६४२
११ जनवरी ६९	बंबई CANCELLED	प्रवचन:	श्री प्रेमचंदजी माहेश्वरी, जीवन जागृति केन्द्र, २९, ईस्टर्न चेम्बर्स, १२८, पूना स्ट्रीट, आरगायलरोड., **बंबई**: ९, फोन: ३२५८१६
१९, २०, २१ जनवरी ६९	अमरावती	सत्संग:	श्री अरविन्द ढवले, जीवन जागृति केन्द्र, खापडे बगीचा, **अमरावती**: महा.
२२ जनवरी ६९	सिवनी	प्रवचन:	प्राचार्य: पालीटेकनिक कालेज, **सिवनी**: म. प्र.

In this PDF, the back-cover is missing.